

संल्लेह सती

प्रकाशक

मंत्री

अगरचन्द्र भैरोदान मेठिया

जैन पारमार्थिक मंथ्या

पीरानेर (गजपूताना)

वीपमालिका,
सं० २००४
पीर २० २४३५

न्योछात्र १॥) देव रमया ।
यह भी ज्ञान प्रसार में लगेगा ।
डाफ रम्य अलग ।

द्वितीयावृत्ति
४०० प्रति

श्री रामरश्मि प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर ।

विषय सूची

नाम	पृष्ठ
१ माक्षी	१
२ सुन्दरी	६
३ चन्दन बाला (वसुमती)	१३
४ राजीमती	६५
५ द्रौपदी	६१
६ कौशल्या	११४
७ मृगावती	११६
८ मुलसा	१२६
९ सीता	१३७
१० सुमद्रा	१५६
११ शिवा	१६२
१२ कुन्ती	१६५
१३ दमयन्ती	१६८
१४ पुष्पचूला	१८०
१५ प्रभावती	१८१
१६ पद्मावती	१८२

सोलह सती

आदि नाथ आदि जिन वर वदी, सफल मनोरथ कीजिये ।
 प्रभाते उठि मागलिय नामे, सोल सतीना नाम लीजिये ॥ १ ॥
 बालकुमारी जगद्विहारी, प्राची भरतनी पहेंनदी ए ।
 घट घट व्यापक अक्षर रूपे, सोल सतीमाँ जे वदी ए ॥ २ ॥
 पाहुयल भगिनी सतीय शिरोमणि, सुन्दरी नामे अपभ सुता ए ।
 अफ स्वरूपी प्रभुवन माँहे, जेह अनुपम गुण जुता ए ॥ ३ ॥
 चन्दन बाला बालपणे थी, शीयलवती शुद्ध आविका ए ।
 चङ्दना बाफला धीर प्रति लाभ्या, केवल लही द्रव भाविका ॥ ४ ॥
 चर्मसेन धुया धारिणी नदिनी, राजीमती नेम दुल्लभा ए ।
 जोवन वेशे कामने जीत्यो, सजम लइ देव दुल्लभा ए ॥ ५ ॥
 पद्म भरतारी पाण्डव नारी, द्रुपद तनया ब्रह्मणीये ए ।
 एक सौ आठे चीर पुराणा, शीयल महिमा तस जाणिये ए ॥ ६ ॥
 दशरथ नृपनी रानी निरुपम, कौशल्या कुल चाद्रिका ए ।
 शीयल सलणी राम जनेता, पुण्य तणी प्रणालिका ए ॥ ७ ॥
 कोशाधिक ठामे सतानिक नामे, राज करे रग राजियो ए ।
 तस घर धरणी मृगावती सती, सुर भुवने जस गाजियो ए ॥ ८ ॥
 सुलसा साची शिदले न काची, राची नहीं बिषय रसे ए ।
 मुखडुँ जोता पाप पलाये, नाम लेता मन हुलसे ए ॥ ९ ॥
 राम रघुवशी तेहनी कामनी, जनक सुता सीता सती ए ।
 जग सह जाणे धीज करता, अन्त शीत थयो शीयलथी ए ॥ १० ॥
 काचे तातणे चालणी बाघी, बूढा थकी जल काढीयूँ ए ।
 कलक उतारवा सती ए सुभद्रा, चम्पा बान उघाड़िया ए ॥ ११ ॥
 सुर नर वन्दित शियल अर्वाण्डत, शिवा शिव पद गामिनी ए ।
 जेहने नामे निर्मल थक्षे, बालिहारी तस नामनी ए ॥ १२ ॥

હસ્તિનાગપુરે પાહુ રાયની, કુતા નામે કામિની એ ।
 પાણ્ડવ માતા દસે દ્રમાર્ણની, વહેન પતિવ્રતા પદ્મિની ॥ ૧૩ ॥
 શીલવતી નામે શીલવતી, ધારિણી, ત્રિવિધે તેહને વદિયે ॥
 નામ જપતા પાતક જાણ, રિસણ દુરિત નિકરીયે ॥ ૧૪ ॥
 નિપધા, નગરી નલ નરિંદની, દમયન્તી તસ ગેહિની ॥
 સકટ પડતા, શીયલ રાઘવ્યું, ત્રિભુવન કીર્તિ-જેહની એ ॥ ૧૫ ॥
 અનગ અજીતા જગ-જન પૂજિતા, પુષ્પચૂલા ને પ્રભાવતી-એ ॥
 વિશ્વ વિખ્યાતા કામને દમતા, સોલમી સતી પદ્માવતી એ ॥ ૧૬ ॥
 વીરે ભાચી શાસ્ત્રે સાચી, હૃદય, રતન માલે, મુદા-એ ॥
 માન હગતા જે નર ભણ્યો, લેશે મુગ્ય સપદા ॥ ૧૭ ॥

દેવ દાણ્ય મેન્ત્રિયા,
 જક્ષરક્ષસ કિન્નરા ।
 વમ્ભયારિ નમસંતિ,
 દુક્કરં જે કરન્તિ ત ॥

(ઉત્તરાધ્યયન ૧૬ વાં અધ્યયન)

પ્રાર્થી.—
 મેરોદાન મેઠિયા,
 બીકાનેર (રાજપૂતાના)



सोलह सती

ब्राह्मी चन्दनबालिका भगवती राजीमती द्रौपदी ।
 रौशन्या च मृगावती च मुलगा मीना सुमद्रा जिवा ॥
 कुन्ती जीनवती नलम्प दपिता चूला प्रमावत्यपि ।
 पद्मावत्यपि मुन्दरी प्रतिदिनं दृष्टु नो मङ्गलम् ॥

अर्थात्—ब्राह्मी, चन्दनबाला, राजीमती, द्रौपदी, रौशन्या,
 मृगावती, मुलगा, मीना, सुमद्रा, जिवा, कुन्ती, दमयन्ती, चूला,
 प्रमावती, पद्मावती और मुन्दरी प्रतिदिन हमारा मङ्गल करें ।

उपरोक्त सोलह सतियों का मङ्गल नीचन चरित्र नीचे लिखे
 अनुसार है—

ब्राह्मी

महाप्रदेह क्षेत्र में पुण्डरीकिणी नाम की नगरी थी । वहाँ पैर
 नाम का चन्द्रवर्ती राजा राज्य करता था । उसने अपने चार
 छोटे भाइयों के साथ भगवान् वैरमेव नाम के तीर्थङ्कर के पास
 वैराग्य पूर्वक दीक्षा ग्रंथीकार की ।

महाप्रुनि वैर वृद्ध दिनों में शास्त्र के पारंगत हो गए । भगवान्

के द्वारा गच्छपाल में नियुक्त किए जाने पर वे पाँच सौ साधुओं के साथ विहार करने लगे। उनके एक भाई का नाम बाहु था। बाहु मुनि लब्धि वाले और उद्यमी थे। वे दूसरे साधुओं की अशन पान आदि के द्वारा सेवा किया करते थे। दूसरे भाई का नाम सुबाहु था। सुबाहु मुनि मन में विना ग्लानि के स्वाध्याय आदि से थके हुए साधुओं की पगचोपी आदि द्वारा वैयावच्च किया करते थे। तीसरे और चौथे भाई का नाम पीठ और महापीठ था। वे दिन रात शास्त्रों के स्वाध्याय में लगे रहते थे।

एक दिन आचार्य ने बाहु और सुबाहु की प्रशंसा करते हुए कहा—ये दोनों साधु धन्य हैं जो दूसरे साधुओं की धार्मिक क्रियाओं को अच्छी तरह पूरा कराने के लिए सदा तैयार रहते हैं। यह सुन कर पीठ और महापीठ मन में सोचने लगे—आचार्य महाराज ने लोक व्यवहार के अनुसार यह बात कही है क्योंकि लोक में दूसरे का काम करनेवाले की ही प्रशंसा होती है। बहुत बड़ा होने पर भी जो व्यक्ति दूसरे के काम नहीं आता वह कुछ नहीं माना जाता, मन में ऐसा विचार आने से उन्होंने स्त्री जातिनामकर्म को बाँध लिया। आयुष्य पूरी होने पर वे पाँचों भाई सर्वार्थसिद्ध विमान में गए। वहाँ से चब कर घेर चक्रवर्ती का जीव भगवान् ऋषभदेव के रूप में उत्पन्न हुआ। बाहु और सुबाहु भरत और बाहुवली के रूप में उत्पन्न हुए। बाकी दो अर्थात् पीठ और महापीठ ब्राह्मी और सुन्दरी के रूप में उत्पन्न हुए। (५ चाशक सालहवाँ)

जम्बूद्वीप के दक्षिण भरत क्षेत्र में अयोध्या नाम की नगरी थी। वर्तमान हुँडावसर्पिणी के तीसरे आर के अन्त में वहाँ नामि राजा नाम के पंद्रहवें कुलकर हुए। उनके पुत्र भगवान् ऋषभदेव प्रथम तीर्थङ्कर, प्रथम राजा, प्रथम धर्मोपदेशक और प्रथम धर्म चक्रवर्ती थे। उनकी माता का नाम मरुदेवी था। युगलधर्म का उच्छेद

हो जाने पर पहले पहल उन्होंने ही व्यवस्था की थी। उन्होंने ही पहले पहल कर्ममार्ग का उपदेश दिया था। उन्हीं के शासन में यह देश अकर्मभूमि (भोग भूमि-जुगलियाधर्म) में बदल कर कर्मभूमि का कर्चव्य करने लगा।

उनके दो गुणवती रानियाँ थीं। एक का नाम था सुमगला और दूसरी का नाम सुनन्दा।

एक बार रात के चौथे पहर में सुमगला रानी ने चाँदह महा-स्वप्न देखे। स्वप्न देखते ही वह जग गई और मारा हाल पति को कहा। पति ने बताया कि इन स्वप्नों के फल स्वरूप तुम्हें चक्रवती पुत्र की प्राप्ति होगी। यह सुन कर सुमगला को बड़ी प्रसन्नता हुई। गर्भवती स्त्री के लिए बताए गए नियमों का पालन करती हुई वह प्रसन्नता पूर्वक दिन पिताने लगी।

पैद्यक शास्त्र में लिखा है—गर्भवती स्त्रियों को बहुत गरम, बहुत ठंडा, गरम मसालों वाला, तीखा, खारा, खट्टा, मडा गला, भारी और पतला भोजन न करना चाहिए। अधिक हँसना, खेलना, मोना, जागना, चलना, फिरना, ऐसी सवारी पर बैठना जिस पर शरीर को कष्ट हो, अधिक खाना, बार बार अजन लगाना, थक जाय ऐसा काम करना, अयोग्य नाटक तथा खेल तमांगे देखना, प्रतिकूल हँसी खेल करना, ये सभी बातें गर्भवती के लिये वर्जित हैं। इनमें गर्भस्थ जीव में किसी प्रकार की खामी होने का डर रहता है।

गर्भवती स्त्री को मन की घबराहट और थकावट के बिना जितनी देर प्रसन्नता और उन्मादपूर्वक हो सके ऐसी पुस्तकें या जीवन चरित्र पढ़ने चाहिए जिन से शिक्षा मिले। सदा रुचिकारक और गर्भ-कोपट्ट करने वाला आहार करना चाहिए। धर्मध्यान, दया दान आर सत्य वगैरह में रुचि रखनी चाहिए। शरीर पर स्वच्छ वस्त्र धारण करने चाहिए और चित्त में उत्तम विचार रख

चाहिए। माता रुं रहन सहन, भोजन और विचारों का गर्भ पर पूरा असर होता है, इस लिए माता को इस प्रकार रहना चाहिए जिससे स्वस्थ, सुन्दर और उत्तम गुणों वाली मन्तान उत्पन्न हो।

सुमंगला रानी ने अपनी सन्तान को श्रेष्ठ और सदगुण सम्पन्न बनाने के लिए ऊपर कहे हुए नियमों का अच्छी तरह पालन किया। गर्भ का समय पूरा होने पर शुभ समय में सुमंगला रानी के पुत्र और पुत्री का जोड़ा उत्पन्न हुआ।

सुनन्दा रानी ने भी ऊपर कहे हुए चौदह स्वप्नों में से चार महा-स्वप्न देखे। गर्भकाल पूरा होने पर उसने भी पुत्र पुत्री के जोड़े को जन्म दिया। इसके बाद सुमंगला रानी ने पुत्रों के उनचास जोड़ों को जन्म दिया। इस प्रकार आदि राजा ऋषभदेव के सौ पुत्र और दो पुत्रियाँ हुई।

सुमंगला देवी ने जिस जोड़े को पहले पहल जन्म दिया उसमें पुत्र का नाम भरत और पुत्री का नाम ब्राह्मी रक्खा गया। सुनन्दा देवी के पुत्र का नाम बाहुबली और पुत्री का नाम सुन्दरी रक्खा गया।

पुत्र और पुत्री जब सीखने योग्य उमर के हुए तो उनके पिता ऋषभदेव ने अपने उत्तराधिकारी भरत को सभी प्रकार की शिल्प-कला, ब्राह्मी को १८ प्रकार की लिपिविद्या और सुन्दरी को गणित विद्या सिखाई। भरत को पुरुष की ७२ कलाएँ और ब्राह्मी को स्त्री की ६४ कलाएँ सिखाई।

ऋषभदेव बीस लाख पूर्व कुमारवस्था में रहे। इसके बाद ६३ लाख पूर्व तक राज्य किया। एक लाख पूर्व आयुष्य बाकी रहने पर अर्थात् तेरामी लाख पूर्व की आयु होने पर उन्होंने राज्य का कार्य भरत को सम्भला दिया। बाहुबली आदि ६६ पुत्रों को भिन्न भिन्न देशों का राज्य दे दिया। एक वर्ष तक बरसी दान देकर दीक्षा अंगीकार की। एक वर्ष की कठोर तपस्या के

चाद एक हजार वर्ष छद्मस्थ रहने के बाद उनके चारों घाती कर्म नष्ट होगए और उन्होंने केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया अर्थात् वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होगए। संसार का कल्याण करने के लिए उन्होंने धर्मोपदेश देना शुरू किया। भगवान् की पहली देशना में भरत महाराज के ५०० पुत्र और ७०० पौत्रों ने वैराग्य प्राप्त किया और भगवान् के पाद दीक्षा अंगीकार कर ली।

बिहार करते करते भगवान् अयोध्या में पधारे। भरत चक्रवर्ती को यह जान कर उड़ा-हर्ष हुआ। ब्राह्मी, सुन्दरी तथा दूसरे परिवार के साथ भरत चक्रवर्ती भगवान् को वन्दना करने के लिए गए। धर्मकथा सुन कर सब के चित्त में अपार आनन्द हुआ। भगवान् ने कहा— प्रिय भोगों में फस कर अज्ञानी जीव अपने स्वरूप को भूल जाते हैं। जो प्राणी अपना स्वरूप समझ कर उसी में लीन रहता है, सासारिक प्रियों से विरक्त होकर धर्म में उद्यम करता है वही कर्मबन्ध को काट कर मोक्ष रूपी अनन्त सुख को प्राप्त करता है। सासारिक सुख क्षणिक तथा भविष्य में दुःख देने वाले हैं। मोक्ष का सुख सनोत्कृष्ट तथा अनन्त है इस लिए भव्य प्राणियों को मोक्ष प्राप्ति के लिये उद्यम करना चाहिए।

ब्राह्मी भगवान् के उपदेश को बड़े ध्यान से सुन रही थी। उस के हृदय में उपदेश गहरा असर कर रहा था। धीरे धीरे उसका मन ससार से विरक्त होकर मयम की ओर झुक रहा था।

सभा समाप्त होने पर ब्राह्मी भगवान् के पास आई और वन्दना करके बोली— भगवन् ! आपका उपदेश सुन कर मेरा मन ससार से विमुख हो गया है। मुझे अब किसी वस्तु पर मोह नहीं रहा है। इस लिये दीक्षा देकर मुझे कृतार्थ कीजिए। संसार के बन्धन मुझे बुरे लगते हैं। मैं उन्हें तोड़ डालना चाहती हूँ। भगवान् ने फरमाया— ब्राह्मी ! इस कार्य के लिये भरत महाराज की आज्ञा लेना आवश्यक

है, उनकी आज्ञा मिलने पर मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा।

ब्राह्मी भरत के पास आई। उसके सामने अपनी दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। भरत ने साधुओं के कठिन मार्ग को बता कर ब्राह्मी को दीक्षा न लेने के लिये समझाना शुरू किया किन्तु ब्राह्मी अपने पिचारों पर दृढ़ रही। भरत ने जब अच्छी तरह समझ लिया कि ब्राह्मी अपने निश्चय पर अटल है, उसे कोई भी विचलित नहीं कर सकता तो उसने प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दे दी। भरत महाराज ब्राह्मी को साथ लेकर भगवान् के पास आए और कहने लगे—

भगवान् ! मेरी बहिन ब्राह्मी दीक्षा अंगीकार करना चाहती है। इसने योग्य शिक्षा प्राप्त की है। ससार में रहते हुए भी विषय प्राप्ति से दूर रही है। सब प्रकार की सुख मामग्री होने पर भी इसका मन विषय भोगों में नहीं लगता। आपका उपदेश सुन कर इसका संसार से मोह हट गया है। यह जन्म, जरा और मृत्यु के दुःखों से छुटकारा पाना चाहती है, इस लिए इसने दीक्षा लेने का निश्चय किया है। दीक्षा का मार्ग कठोर है, यह बात इसे अच्छी तरह मालूम है। इसमें दुःख और कष्टों को सहन करने की पर्याप्त शक्ति है। संयम अंगीकार करने के बाद यह चारित्र्य का शुद्ध पालन करेगी, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। इसकी दीक्षा के लिए मेरी आज्ञा है। इसे दीक्षा देकर मुझे कृतार्थ कीजिए। मैं आपको अपनी बहिन की भिक्षा देता हूँ, इसे स्वीकार करके मुझे कृतकृत्य कीजिए।

सब के सामने भरत महाराज के ऐसा कहने पर भगवान् ने ब्राह्मी को दीक्षा दे दी।

(२) सुन्दरी

ब्राह्मी को दीक्षित हुई जान कर सुन्दरी की इच्छा भी दीक्षा लेने की हुई किन्तु अन्तराय कर्म के उदय से भरत ने उसे आज्ञा न दी। आज्ञा न मिलने से वह समयम अंगीकार न कर सकी।

द्रव्य समय न लेने पर भी उमका अन्तःकरण भाव संयममय था।

थोड़े दिनों बाद भरत छः सड़ सागने के लिये दिग्विजय पर चले गए। सुन्दरी ने गृहस्थ वेश में रहते हुए भी कठोर तप करने का निश्चय किया। उमी दिन में छः विगयो का त्याग करके प्रति दिन आयम्बिल करने लगी। छः सड़ माघने में भरत को साठ हजार वर्ष लग गए। सुन्दरी तप तक परापर आयम्बिल करती रही। उमका शरीर निष्कुल खस गया। केवल अस्थि पजर रह गया।

भरत महाराज छः सड़ साध कर वापिस लौटे। सुन्दरी के कृश शरीर को देख कर उन्हे निश्चय हो गया कि उसके हृदय में वैराग्य ने घर कर लिया है। वह अपने दीक्षा लेने के निश्चय पर अटल है। भरत चक्रवर्ती अपने मन में सोचने लगे—

बहिन सुन्दरी को धन्य है। आत्मकल्याण के लिए इसने घोर तप अगीकार किया है। ऐसी सुलक्षणा देवियों अपने शरीर में मोक्ष स्त्री परम पद को प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं और भोगों की इच्छा वाले भोले प्राणी हमी शरीर के द्वारा दुर्गति के कर्म बोधते हैं। यह शरीर तो रोग, चिन्ता, मल, मूत्र, श्लेष्म वगैरह गन्दे पदार्थों का घर है। अतः वगैरह लगा कर इसे सुगन्धित बनाने का प्रयत्न करना मूर्खता है। गन्दे शरीर के लिये गर्ज करना अज्ञानता है। मेरी बहिन को धन्य है जो शरीर और धन दौलत की अनित्यता का खयाल करके मायावी सासारिक भोगों में नहीं फँसी और नित्य और असड़ मुख देने वाले समय को अगीकार करना चाहती है। सुन्दरी पहले भी दीक्षा लेने को तैयार हुई थी, किन्तु मैंने उसके इस कार्य में बाधा देकर उसे रोक दिया था किन्तु सुन्दरी ने अपने इस तप द्वारा अब मुझे भी साधन कर दिया है। वास्तव में ससार सुखों में कोई सार नहीं है।

मैं जानते हुए भी

ऐसी नहीं है कि मैं

अङ्गीकार कर सकूँ । सुन्दरी महर्ष दीक्षा ले सकती है । सुन्दरी को इस सुकार्य में रोकना न तो उचित है और न इसकी कोई आवश्यकता ही है अब मैं इसके लिए उमे सहर्ष आज्ञा दे दूँगा ।

जिस समय भरत ने यह निश्चय किया, सयोग वश उसी समय तरण तारण, जगदाधार, प्रथम तीर्थङ्कर श्री आदि जिनेश्वर विचरते हुए अयोध्या में पधारे और नगर के बाहर एक उद्यान में ठहर गए ।

वनपाल द्वारा भरत को यह समाचार मालूम होते ही वे स्वजन, परिजन और पुरजन सहित बड़े ठाठ बाठ के साथ प्रभु को वन्दना करने के लिए उम उद्यान में गए । वहाँ पहुँचते ही छत्र, चमर, शस्त्र, मुकुट और जूते इन पाँच वस्तुओं को अलग रख कर उन्होंने जिनेश्वर भगवान् को भक्ति पूर्वक वन्दना किया । इसके बाद उन का धर्मोपदेश सुनने के लिए वे भी अन्यान्य श्रोताओं के साथ वहीं बैठ गए । भगवान् उम समय बहुत ही मधुर शब्दों में धर्मोपदेश दे रहे थे, उमे सुन कर भरत को बहुत ही आनन्द हुआ ।

धर्मोपदेश समाप्त होने पर भरत ने भगवान् से नम्रतापूर्वक कहा—हे जगत्पिता ! मेरी बहिन सुन्दरी आज से साठ हजार वर्षों से दीक्षा लेने को तैयार हुई थी, किन्तु मैंने उसके इस कार्य में बाधा देकर उसे दीक्षा लेने में रोक दिया था । उस समय मुझे भले बुरे का ज्ञान न था । अब मुझे मालूम होता है कि मेरी वह कार्य बहुत ही अन्यायपूर्ण था । निःसन्देह अपने इस कार्य में मैं पाप का भागी हुआ हूँ । हे भगवन् ! मुझे बतलाइए कि मैं अब किस तरह इस पाप से मुक्त हो सकता हूँ ।

जिनेश्वर भगवान् ने यह निवेदन करने के बाद भरत से सुन्दरी को दीक्षा लेने की आज्ञा देते हुए उमसे क्षमा प्रार्थना की । सुन्दरी ने उनका यह पश्चात्ताप देख कर उन्हें मान्त्वना देते हुए कहा—मुझे दीक्षा लेने में जो विलम्ब हुआ है उममें उसी का ही दोष है, .

आपका नहीं, इस लिए आप को खिन्न होने या पथात्ताप करने की आवश्यकता नहीं है। वर्षा ऋतु में मूसलधार वृष्टि होने पर भी यदि पपीहा प्यामा ही रह जाता है तो यह उमके कर्मों का ही दोष है, मेघ का नहीं। वसन्त ऋतु में मभी लताएँ और वृक्ष नए पत्ते और फल फूलों में लद जाते हैं। यदि उम समय करीर वृक्ष पल्लवित नहीं होता तो यह उसी का दोष है, वसन्त का नहीं। मूर्योदय होने पर मभी प्राणी देवने लगते हैं। यदि उस समय उल्लू की आँखें बन्द हो जाती हैं तो यह उसी का दोष है, सूर्य का नहीं। मेरे अन्तराय कर्म ने ही मेरी टीला में गाथा दी थी, आपने नहीं। मैं इसमें आपका कुछ भी दोष नहीं मानती।

इस प्रकार के अनेक उचन कह कर सुन्दरी ने भरत को शान्त किया। इसके बाद उसने उमी समय जिनेश्वर भगवान के निकट टीला ले ली। सामारिक ग्रन्थों से मुक्त होकर सुन्दरी शुद्ध चारित्र्य का पालन करते हुए दुष्कर तप करने लगी।

जिम समय भरत ने छह सट जीतने के लिए प्रस्थान किया उनके छोटे भाई बाहुबली तक्षशिला में राज्य कर रहे थे। बाहुबली को अपनी शक्ति पर विश्वास था। भरत के अधीन रहना उसे पसन्द न था। उसने मोचा-पूज्य पिताजी से जिस प्रकार भरत को अयोध्या का राज्य दिया है, उसी प्रकार मुझे तक्षशिला का राज्य दिया है। जो राज्य मुझे पिताजी से प्राप्त हुआ है, उसे छीनने का अधिकार भरत को नहीं है। यह सोच कर उस ने भरत के अधीन रहने से इन्कार कर दिया। चक्रवर्ती बनने की अभिलाषा से भरत ने बाहुबली पर चढ़ाई कर दी। बाहुबली ने भी अपनी मेना के साथ आकर सामना किया। एक दूसरे के शक्त की प्यासी बन कर दोनों सेनाएँ मैदान में आकर डट गईं। एक दूसरे पर दूटने के लिए आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे।

इतने में इन्द्र ने स्वर्ग में आकर कहा—तुम लोग व्यर्थ सेना का सहार क्यों कर रहे हो ? अगर तुम्हें लड़ना ही है तो तुम दोनों पञ्च-युद्ध करो। दोनों भाइयों ने इन्द्र की बात को मान लिया। सेनाओं द्वारा लड़ने से होने वाले रक्तपात को व्यर्थ समझ कर पाँच प्रकार से मल्लयुद्ध करने का निश्चय किया। पहले के चार युद्धों में बाहुवली की जीत हुई, फिर मुष्टि युद्ध की बारी आई। बाहुवली की भुजाओं में बहुत बल था। उसे अपनी विजय पर विश्वास था। भरत के मुष्टिप्रहार को उसने समभाव से सह लिया। इसके बाद स्वयं प्रहार करने के लिए मुष्टि उठाई। उन्नीसवें शक्रेन्द्र ने उसे पकड़ लिया और बाहुवली से कहा—बाहुवली ! यह क्या कर रहे हो ! बड़े भाई पर हाथ चलाना तुम्हें शोभा नहीं देता। तुच्छ राज्य के लिए क्रोध के वशीभूत होकर तुम कितना बड़ा अनर्थ कर रहे हो, यह मन में सोचो।

बाहुवली की मुट्ठी उठी की उठी ही रह गई। उनके मन में पश्चात्ताप होने लगा। वे मन में सोचने लगे—‘जिस राज्य के लिए इस प्रकार का अनर्थ करना पड़े वह कभी सुखदायक नहीं हो सकता। इस लिए इसे छोड़ देना ही श्रेयस्कर है। वास्तविक सुख तो संयम से प्राप्त हो सकता है।’ यह सोच कर उन्होंने संयम लेने का निश्चय कर लिया।

उठाई हुई मुट्ठी को वापिस लेना अनुचित समझ कर बाहुवली उन्नीसवें मुष्टि द्वारा अपने सिर का पंचमुष्टि लोच करके वन में चले गए। वहाँ जाकर ध्यान लगा लिया। अभी तक उनके हृदय से अभिमान दूर न हुआ था। मन में सोचा—मेरे छोटे भाइयों ने भगवान् के पास पहले से दीक्षा ले रखी है। यदि मैं अभी भगवान् के दर्शनार्थ गया तो उन्हें भी वन्दना करनी पड़ेगी। यह सोच कर वे भगवान् को वन्दना

करने नहीं गए ।

वन में ध्यान लगा कर सड़े सड़े उन्हें एक वर्ष बीत गया । पक्षियों ने कन्धों पर घोंसले बना लिए । लताएं वृक्ष की तरह चारों ओर लिपट गईं । सिंह, व्याघ्र, हाथी तथा दूसरे जंगली जानवर गुराति हुए पाम से निकल गए किन्तु वे अपने ध्यान से विचलित न हुए । काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि आभ्यन्तर शत्रु उनसे हार मान गए किन्तु अहंकार का कीड़ा उनके हृदय में न निकला । छोटे भाइयों को वन्दना न करने का अभिमान उन के मन में अभी जमा हुआ था । इसी अभिमान के कारण उन्हें केवलज्ञान नहीं हो रहा था ।

भगवान् ऋषभदेव ने अपने ज्ञान द्वारा बाहुवली का यह हाल जाना । उन्होंने ब्राह्मी और सुन्दरी को बुला कर कहा—तुम्हारे भाई बाहुवली अभिमान रूपी हाथी पर चढ़े हुए हैं । हाथी पर चढ़े केवलज्ञान नहीं हो सकता । इस लिए जाओ और अपने भाई को अहंकार रूपी हाथी से नीचे उतारो ।

भगवान् की आज्ञा को प्राप्त कर दोनों मतियाँ बाहुवली के पाम आई और कहने लगीं—

बीराम्भारा गज थकी देठा उतरो, गज चढ़्या केवल न होसी रे ॥ टेका ॥

ग्रन्धत्र गज थकी उतरो, ब्राह्मी सुन्दरी इस भाये रे ।

ऋषभ जिनेश्वर मोक्ली, बाहुवल तुम पामे रे ॥

लोभ तजी मयम लियो, आयो बली अभिमानो रे ।

लघु वन्धत्र ग्रन्धू नहीं, काउसग रखा शुभ ध्यानो रे ॥

बरस दिवस काउसग रखा, बेलड़िया लिपनानी रे ।

पञ्ची माला माडिया, शीत ताप मुलानी रे ॥

भाई बाहुवली ! भगवान् ने अपना मन्देश सुनाने के लिए

इतने में इन्द्र ने स्वर्ग से आकर कहा—तुम लोग व्यर्थ सेना का संहार क्यों कर रहे हो ? अगर तुम्हें लड़ना ही है तो तुम दोनों पञ्च-युद्ध करो। दोनों भाइयों ने इन्द्र की बात को मान लिया। सेनाओं द्वारा लड़ने से होने वाले रक्तपात को व्यर्थ समझ कर पाँच प्रकार से मल्लयुद्ध करने का निश्चय किया। पहले के चार युद्धों में बाहुवली की जीत हुई, फिर मुष्टि युद्ध की बारी आई। बाहुवली की भुजाओं में बहुत बल था। उसे अपनी विजय पर विश्वास था। भरत के मुष्टिप्रहार को उसने समभाज से सह लिया। इसके बाद स्वयं प्रहार करने के लिए मुष्टि उठाई। उसी समय शक्रेन्द्र ने उसे पकड़ लिया और बाहुवली से कहा—बाहुवली ! यह क्या कर रहे हो ! बड़े भाई पर हाथ चलाना तुम्हें शोभा नहीं देता। तुच्छ राज्य के लिए क्रोध के वशीभूत होकर तुम कितना बड़ा अनर्थ कर रहे हो, यह मन में सोचो।

बाहुवली की मुट्ठी उठी की उठी ही रह गई। उनके मन में पश्चात्ताप होने लगा। वे मन में सोचने लगे—‘जिस राज्य के लिए इस प्रकार का अनर्थ करना पड़े वह कभी सुखदायक नहीं हो सकता। इस लिए इसे छोड़ देना ही श्रेयस्कर है। वास्तविक सुख तो मंयम से प्राप्त हो सकता है।’ यह सोच कर उन्होंने समय लेने का निश्चय कर लिया।

उठाई हुई मुट्ठी को वापिस लेना अनुचित समझ कर बाहुवली उमी मुट्ठी द्वारा अपने सिर का पंचमुष्टि लोच करके वन में चले गए। वहाँ जाकर ध्यान लगा लिया। अभी तक उनके हृदय से अभिमान दूर न हुआ था। मन में सोचा—मेरे छोटे भाइयों ने भगवान् के पास पहले से दीक्षा ले रखी है। यदि मैं अभी भगवान् के दर्शनार्थ गया तो उन्हें भी वन्दना करनी पड़ेगी। यह सोच कर वे भगवान् को वन्दना

करने नहीं गए ।

वन में ध्यान लगा कर खड़े खड़े उन्हें एक वर्ष बीत गया । पक्षियों ने कन्धों पर घोंसले बना लिए । लताएँ वृक्ष की तरह चारों ओर लिपट गईं । सिंह, व्याघ्र, हाथी तथा दूसरे जंगली जानवर गुराते हुए पाम से निकल गए किन्तु वे अपने ध्यान से विचलित न हुए । काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि आभ्यन्तर शत्रु उनमें हार मान गए किन्तु अहंकार का कीड़ा उनके हृदय में न निकला । छोटे भाइयों को वन्दना न करने का अभिमान उन के मन में अभी जमा हुआ था । इसी अभिमान के कारण उन्हें केवलज्ञान नहीं हो रहा था ।

भगवान् ऋषभदेव ने अपने ज्ञान द्वारा बाहुबली का यह हाल जाना । उन्होंने ब्राह्मी और सुन्दरी को बुला कर कहा—तुम्हारे भाई बाहुबली अभिमान रूपी हाथी पर चढ़े हुए हैं । हाथी पर चढ़े केवलज्ञान नहीं हो सकता । इस लिए जाओ और अपने भाई को अहंकार रूपी हाथी से नीचे उतारो ।

भगवान् की आज्ञा को प्राप्त कर दोनों सतियाँ बाहुबली के पाम आईं और कहने लगीं—

धीराम्दारा गज थकी ठेठा उतरो, गज चढ़्या नेवल न होसी रे ॥ टेका ॥

बन्धव गज थकी उतरो, ब्राह्मी सुन्दरी इस भापे रे ।

ऋषभ जिनेश्वर मोक्ली, बाहुबल तुम पासे रे ॥

लोभ तजी सथम लियो, आयो बली अभिमानो रे ।

लघु पन्धर पन्दू नहीं, काउसगग रह्यो शुभ ध्यानो रे ॥

बरस दिवस काउसगग रह्या, बेलडिया लिपटानी रे ।

पञ्ची माला माडिया, शीत ताप सुखानी रे ॥

भाई बाहुबली ! भगवान् ने अपना सन्देश सुनाने के लिए

हमें आपके पास भेजा है। आप हाथी पर चढ़े बैठे हैं। जरा नीचे उतरिए। आपने राज्य का लोभ छोड़ कर संयम तो धारण किया किन्तु छोटे भाइयों को वन्दना न करने का अभिमान आ गया। इसी कारण इतने दिन ध्यान में खड़े रहने पर भी आपको केवल ज्ञान नहीं हुआ। इस लम्बे और कठोर ध्यान में आपका शरीर कैसा कुश हो गया है। पक्षियों ने आपके कन्धों पर घोंसले बना लिए। डॉसों, मच्छरों और मक्खियों ने शरीर को चलनी बना दिया किन्तु आप ध्यान में विचलित न हुए। ऐसा उग्र तप करते हुए भी आपने अभिमान को आश्रय क्यों दे रखा है? यह अभिमान आपकी महान् करणी को सफल नहीं होने देता।

साध्वी वचन सुनी करी, चमक्या चित्त ममारा रे।

हय, गय, रथ, पायक छाड़िया, पर चढियो अहंकारो रे॥

बैंगने मन बालियो, मूख्यो निज अभिमानो र।

चरण उठायो वन्दवा, पाया केवल ज्ञानो रे॥

अपनी बहिनों के सन्देश को सुन कर ग्राहुवली चौंक पड़े। मन ही मन कहने लगे क्या मैं सचमुच हाथी पर बैठा हूँ? हाथी, घोड़े, राज्य, परिजन आदि सब को छोड़ कर ही मैंने दीक्षा ली थी। फिर हाथी की सवारी कैसी? हाँ अब ममभ्रम आया। मैं अहंकार रूपी हाथी पर बैठा हूँ। मेरी बहिनें ठीक कह रही हैं। मैं कितने भ्रम में था। छोटे और बड़े की कल्पना तो सामारिकजीवों की है। आत्मा अनादि और अनन्त है। फिर उसमें छोटा कौन और बड़ा कौन? आत्मजगत् में वही बड़ा है जिसने आत्मा का पूर्ण विकास कर लिया है। संसारान्तरा में छोटे होने पर भी मेरे भाइयों ने आत्मा का पूर्ण विकास कर लिया है। मेरी आत्मा में अब भी अहङ्कार मरा

। इस लिए

वास्तव में वे ही मुक्त

यह मोच कर माहुल्ली ने भगवान् ऋषभदेव के पास जाने के लिए एक पैर आगे रक्खा। इतने में उनके चार घाती कर्म नष्ट हो गए। उन्हें केवलज्ञान हो गया। देवी ने पुष्पवृष्टि की। चारों ओर जय जयकार होने लगा।

दोनों रहिने अपने स्थान पर लौट गई। पृथ्वी पर धूम धूम कर उन्होंने अनेक भव्य प्राणियों को प्रतिमोक्ष दिया। अनेक भूले भटके जीवों को आन्मन्त्र्याण का मार्ग बताया। कठोर तप और शुभ ध्यान द्वारा अपने कर्मों को नष्ट करने का भी प्रयत्न किया। इस प्रकार आत्मा तथा दूसरों के कल्याण की साधना करते करते उनके घाती कर्म नष्ट हो गए। केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर आयुष्य पूर्ण होने पर दोनों ने मोक्ष रूपी परमपद को प्राप्त किया। इन दोनों महामतियों को मदा वन्दन हो।

चन्दनवाला (वसुमती)

विहार प्रान्त में जो स्थान आज कल चम्पारन के नाम से प्रसिद्ध है, प्राचीन समय में वहाँ चम्पापुरी नाम की विशाल नगरी थी। वह अङ्गदेश की राजधानी थी। नगरी व्यापार का केन्द्र, धन धान्य आदि में समृद्ध तथा मन प्रसार से सुसज्जित थी।

वहाँ दधिवाहन नाम का राजा राज्य करता था। वह न्याय, नीति तथा प्रजा पालन आदि गुणों का भण्डार था। प्रजा पर पुत्र के समान प्रेम रखता था और प्रजा भी उसे पिता मानती थी। ऐसे राजा को प्राप्त करके प्रजा अपने को धन्य समझती थी।

दधिवाहन राजा की धारिणी नाम की रानी थी। पतिमेवा, धर्म पर श्रद्धा, उदारता, हृदय की कोमलता आदि जितने गुण राजरानी में होने चाहिए वे सब धारिणी में विद्यमान थे। राजा तथा रानी दोनों धर्मपरायण थे। दोनों में परस्पर अगाध प्रेम था। दोनों विलासिता से दूर थे। राज्य को भोग्य वस्तु न

और एक वृक्ष के नीचे बैठ कर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगी।
 प्रातःकाल होते ही वसुमती की सखियाँ उसे जगाने के लिए
 महल में आईं किन्तु वसुमती वहाँ न मिली। दूँदती दूँदती ने
 अगोकवाटिका में चली आई। वहाँ उसे चिन्तित अवस्था में
 बैठी हुई देख कर आपस में कहने लगीं—वसुमती को अब
 अकेली रहना-अच्छा नहीं लगता। वह किमी योग्य साथी की
 चिन्ता कर रही है। ने सब मिल कर वसुमती में विवाह
 सम्बन्धी तरह तरह के मजाक करने लगी।

वसुमती को उनकी अज्ञानता पर दया आ गई। वहाँ सोचने
 लगी—स्त्री समाज का हृदय कितना विकृत हो गया है। उस
 इतना भी ज्ञान नहीं है कि विवाह के मित्राभ्यास भी चिन्ता का
 कोई कारण हो सकता है। उसने सखियों को फटकारते हुए
 कहा—जन्म में एक साथ रहने पर भी तुम मुझे न समझ सकी।
 मुझे भी अपने समान तुच्छ पिचार्गों वाली समझ लिया है।
 विवाह न करने का तो मैं निश्चय कर चुकी हूँ फिर उसमें सम्बन्ध
 रखने वाली कोई-चिन्ता मेरे मन में आ ही कैसे सकती है?

मेरे विचार में प्रत्येक स्त्री पुरुष पर तीन व्यक्तियों के ऋण
 है—माता, पिता और धर्माचार्य। मायू, श्वसुर, पति आदि स
 ऋण भी स्त्री पर होता है किन्तु उसे करना या न करना अपने
 हाथ की बात है। पहले तीन ऋण तो प्रत्येक प्राणी पर होते हैं।
 उन्हें चुकाना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। मेरी माता ने मुझे
 शिक्षा दी है की धर्म और समाज की सेवा द्वारा इन ऋणों का
 अवश्य चुकाना। मनुष्य जन्म-वार २ नहीं मिलता। नियमयोग
 में उसे गँवा देना-मूर्खता है। मानव जीवन का उद्देश्य
 साधन ही है। जो कन्या पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन नहीं
 उभी के लिए विवाह का विधान है। जो ब्रह्मचर्य का

करने में ममर्थ है उसे विवाह की कोई आवश्यकता नहीं है । माता पिता और धर्म की सेवा करके म ऊपर लिखे तीनों ऋणों से मुक्त होना चाहती हूँ ।

वसुमती की ये बातें सखियों को विचित्र सी मालूम पड़ी । उन्होंने सोचा ये कोरी उपदेश की बातें हैं । दिल की बातें कुछ और हैं । उनके फिर पूछने पर वसुमती ने स्वप्न का मारा हाल सुना दिया । सखियाँ स्वप्न का वृत्तान्त महारानी को सुनाने चली गई । वसुमती फिर विचार में पड़ गई । मन में कहने लगी—इस स्वप्न ने मेरे द्वारा एक महान् कार्य के होने की सूचना दी है । मुझे अभी से उसके लिए तैयार रहना चाहिए । उसके लिए शक्ति का मचय करना चाहिए ।

सखियों ने स्वप्न का हाल धारिणी को सुनाया । उसने कहा—अगर मेरी पुत्री ऐसे महान् कार्य को सम्पन्न कर सके तो मेरे लिए इसमें बढ कर क्या सौभाग्य की बात होगी । वसुमती के इस स्वप्न के कारण उसके विवाह की बात अनिश्चित काल के लिए टाल दी गई । वसुमती जैसा चाहती थी वही हो गया ।

चम्पापुरी के राज्य की सीमा पर कौशाम्बी नाम का दूसरा राज्य था । कौशाम्बी भी धन धान्य से समृद्ध तथा व्यापार के लिए प्रसिद्ध नगरी थी । वहाँ शतानीक नाम का राजा राज्य करता था । दधिवाहन की रानी पद्मावती और शतानीक की रानी मृगावती दोनों मगी बहने थीं । इस लिए वे दोनों राजा आपस में मादृ थे ।

मम्बन्धी होने पर भी दोनों राजाओं के स्वभाव में महान् अन्तर था । दधिवाहन मन्तोषी, शान्तिप्रिय और धार्मिक था, उसमें राज्यलिप्सा न थी । दूसरे को कष्ट में डाल कर ऐश्वर्य बढ़ाना उसकी दृष्टि में घोर पाप था । ऐश्वर्य पाकर धनसत्ता द्वारा दूसरों पर आतङ्क जमाना उसे पसन्द न था । सभी को सुख पहुँचा

वह प्राणिमात्र से मित्रता चाहता था, उन पर आधिपत्य नहीं।

शतानीक के विचार इसके सर्वथा निपरीत थे। वह दिन रात राज्य को बढ़ाने की चिन्ता में लगा रहता था। न्याय और धर्म का गला घोट कर भी वह राज्य और वैभव बढ़ाना चाहता था। जनता पर आतङ्क जमा कर शासन करना अपना धर्म समझता था। अपनी राज्यलिप्ता को पूर्ण करने के लिए निर्दोष प्राणियों को कुचलना, उनके खून से होली खेलना खेल ममझता था।

शतानीक की दृष्टि में समृद्ध चम्पापुरी सदा सटका करती थी। न्याय पूर्वक राज्य करने से फैलने वाली दधिवाहन की कीर्ति भी उसने लिए असह्य हो उठी थी। ईर्ष्यालु जब गुणों द्वारा अपने प्रतिस्पर्द्धी को नहीं जीत सकता तो वह उसे दूसरे उपायों से नुकसान पहुँचाने की चेष्टा करता है किन्तु उससे उसकी अपकीर्ति ही बढ़ती है, वह अपने स्वार्थ को सिद्ध नहीं कर सकता।

दधिवाहन या चम्पापुरी पर किसी प्रकार का दोष मढ़ कर उस पर चढ़ाई कर देने की चालें शतानीक अपने मन्त्रिमण्डल के साथ सोचा करता था। अपनी बुरी कामना को पूर्ण करने के लिए दूसरे पर किसी प्रकार का अपवाद लगा देना, उसे अपराधी बता कर इच्छित वस्तु पर अधिकार जमा लेना, उसे नीचा दिखाने के लिए कोई झूठा दोष मढ़ देना तथा मनमानी करते हुए भी स्वयं निर्दोष बने रहना शतानीक की दृष्टि में राजनीति थी।

चम्पापुरी का राज्य हड़पने के लिए शतानीक कोई ब्रह्माना ढूँढ़ रहा था, किन्तु दधिवाहन के हृदय में युद्ध करने या किसी का राज्य छीनने की बिल्कुल इच्छा न थी। आस पास के सभी राजाओं से उसकी मित्रतापूर्ण मन्धि थी। इस लिए न उसे किसी शत्रु का डर था और न उससे किसी दूसरे को भय था। इसी कारण से उसने राज्य के आन्तरिक ग्रन्थ के लिए थोड़ी सी सेना रख

छोड़ी थी। युद्ध या किसी के आक्रमण को रोकने के लिए सैनिक शक्ति को बढ़ाना उनकी दृष्टि में व्यर्थ था, इसी में शतानीक का उत्साह बहुत बढ़ गया था। दधिवाहन की मुठि भर सैन्य को हरा कर चम्पापुरी पर अधिकार जमा लेने में उसे किसी प्रकार की कठिनाई न जान पड़ती थी।

शतानीक ने किसी मामूली सी बात को लेकर चम्पापुरी पर चढ़ाई कर दी। दधिवाहन को इस बात का स्वप्न में भी खयाल न था कि कोई राजा उस पर भी चढ़ाई कर सकता है। युद्ध की घोषणा करती हुई शतानीक की सेना चम्पा के राज्य में घुम गई और प्रजा को मताने लगी। सीमा की रक्षा करने वाले दधिवाहन के थोड़े से मिपाही उसका सामना न कर सके। वे दौड़े हुए दधिवाहन के पास आए और चढ़ाई का समाचार सुनाया। शतानीक की सेना द्वारा मताई गई प्रजा ने भी राजा दधिवाहन के पास पुकार की।

दधिवाहन इस अप्रत्याशित समाचार को सुन कर विचार में पड़ गया। उसने अपने मन्त्रियों की सभा बुलाई और कहा— मित्रतापूर्ण मन्त्रि होने पर भी शतानीक ने चम्पा पर चढ़ाई कर दी है। हमारे खयाल में अभी कोई भी ऐसा कारण उपस्थित नहीं हुआ जिससे शतानीक के आक्रमण को उचित कहा जा सके। अब यह विचार करना है कि शतानीक ने चढ़ाई क्यों की और इस समय हमें क्या करना चाहिए?

प्रधान मंत्री— इस समय ऐसा कोई भी कारण उपस्थित नहीं हुआ जिससे शतानीक को चढ़ाई करनी पड़े। शतानीक चम्पापुरी को हड़पन की दुर्भावना से प्रेरित होकर आया है। उसे किसी दूसरे कारण की आवश्यकता नहीं है। ऐसा व्यक्ति साधारण, सी बात को युद्ध का कारण बना सकता है। चम्पापुरी पर चढ़ाई करने के लिए शतानीक ऐसी चालें बहुत दिनों से चल रहा,

इसके लिए मैंने आप से पहले भी निवेदन किया था। हम लोगों ने मठा शान्ति के लिए प्रयत्न किया किन्तु वह हमारी इस इच्छा को कायरता-समझता रहा। अब एक ही उपाय है कि शत्रु का सामना करके उसे प्रता दिया जाय कि चम्पा पर चढ़ाई कोई हँसी खेल नहीं है। जब तक शत्रु को पराजित न किया जाएगा वह मानने का नहीं। शान्ति की बातों से उसका उत्साह दुगुना बढ़ता है। दूसरे मन्त्रियों ने भी युद्ध करने की ही सलाह दी।

मन्त्रियों की बात सुन कर राजा कहने लगा—वर्तमान राजनीति के अनुसार तो हमें युद्ध ही करना चाहिए, किन्तु इसके भयङ्कर परिणाम पर भी विचार करना आवश्यक है। शतानीक ने राज्य के लोभ में पड़ कर आक्रमण किया है। लोभी न्याय और अन्याय को भूल जाता है। अगर हम उसका सामना करें तो व्यर्थ ही लाखों मनुष्य मारे जाएंगे। अगर चम्पा का राज्य छोड़ देने पर यह नरहत्या बच जाय तो क्यों इस भयङ्कर पाप को किया जाय? मन्त्री—महाराज! शत्रु द्वारा आक्रमण हो जाने पर धर्म की बातें करना कायरता है ऐसे मौकों पर क्षत्रिय का यह कर्तव्य है कि शत्रु का सामना करे।

राजा—क्षत्रिय का धर्म युद्ध करना नहीं है। उसका धर्म न्याय-पूर्वक प्रजा की रक्षा करना है। अन्याय और अधर्म को हटाने के लिए जो अपने प्राणों को त्याग सकता है वही असली क्षत्रिय है। क्षात्रत्व-हिसा में नहीं है किन्तु अहिंसा में है। यदि शतानीक को न्याय और नीति के लिये समझाया जाय तो सम्भव है, वह मान जाय। इसके लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए मैं स्वयं शतानीक के पास जाऊँगा।

मन्त्रियों के विरोध करने पर भी दधिवाहन ने शतानीक के पास अकेले जाने का निश्चय कर लिया।

शतानीक में चम्पा का राज्य लेने की भावना दृढ़ हो चुकी थी और दधिवाहन में यथासम्भव हिंसा न होने देने की।

राजकर्मचारी तथा प्रजाजन द्वारा की गई प्रार्थना पर बिना ध्यान दिए दधिवाहन राजा घोड़े पर सवार होकर शतानीक के पामजा पहुँचे। उन्हें अकेला आया देख कर शतानीक बहुत प्रमत्त हुआ। उसका अभिमान और उठ गया। सोचने लगा—दधिवाहन डर कर मेरी शरण में चला आया है।

शतानीक के पाम पहुँच कर दधिवाहन ने कहा—महाराज ! हम दोनों में मित्रतापूर्ण सन्धि है। आप मेरे सम्बन्धी भी हैं आज तक हम दोनों का पारस्परिक व्यवहार प्रेमपूर्ण रहा है। मेरे खयाल में हमारी तरफ से ऐसी कोई बात नहीं हुई जिससे आपको किसी प्रकार की हानि हुई हो फिर भी आपने अचानक चम्पापुरी पर आक्रमण कर दिया। मेरा खयाल है, आप भी प्रजा में शान्ति रखना पसन्द करते हैं। नरहत्या आपको भी पसन्द नहीं है। आप इस बात को समझते हैं कि वृत्रिय का धर्म किसी को कष्ट देना नहीं किन्तु कष्ट देने वाले चोर और डाकुओं से प्रजा की रक्षा करना है। यदि राजा स्वयं कष्ट देने लगे तो उसे राजा नहीं, लुटेरा कहा जाएगा ?

क्या आप कोई ऐसा कारण बता सकते हैं जिससे आप के इस आक्रमण को न्यायपूर्ण कहा जा सके।

शतानीक—जब शत्रु ने आक्रमण कर दिया हो उस समय न्याय-अन्याय की बात करना कायरता है। अपनी कायरता को धर्म की आड़ में छिपाना वीर पुरुषों का काम नहीं है। इस समय न्याय और धर्म का बहाना निरादोंग है। युद्ध करना, नए नए देश जीतना, अपना राज्य बढ़ाना, वृत्रियों के लिए यही न्याय दधिवाहन—युद्ध से होने वाले भयङ्कर परिणाम पर

विचार कीजिये। लाखों निर्दोष मनुष्य आपस में कटकर समाप्त हो जाते हैं। हजारों बहने विधवा हो जाती हैं। देश नवयुवकों से खाली हो जाता है चारों ओर बालक, वृद्ध और अबलाओं की करुण पुकार रह जाती है। एक व्यक्ति की लिप्सा का परिणाम यह महान् संहार कभी न्याय नहीं कहा जा सकता। हिंसा राक्षसी वृत्ति है। उसे धर्म नहीं कहा जा सकता। आपका जरासा सन्तोष इस भीषण हत्याकाण्ड को बचा सकता है।

शतानीक— मुझे सन्तोष की आवश्यकता नहीं है। राजनीति राजा को मन्तोषी होने का निषेध करती है। पृथ्वी पर वे ही शासन करते हैं जो वीर हैं, शक्तिशाली हैं। क्षत्रियों के लिए तलवार ही न्याय है और अपनी राज्यलिप्सा रूपी अग्नि को मदा प्रज्वलित रखना ही उनका धर्म है।

दधिवाहन को निश्चय हो गया कि शतानीक लोभ में पड़ कर अपनी बुद्धि को खो बैठा है। इस प्रकार की बातें करके यह मुझे युद्ध के लिए उतेजित करना चाहता है लेकिन इसके कहन पर क्रोध में आकर विवेक खो बैठना बुद्धिमत्ता नहीं है। गम्भीरतापूर्वक विचार करके मुझे किसी प्रकार युद्ध को रोकना चाहिए।

दधिवाहन को विचार में पड़ा देख कर शतानीक ने कहा— आप मोच क्या कर रहे हैं? यदि शक्ति हो तो हमारा सामना कीजिए। यदि युद्ध में डर लगता है तो आत्ममर्षण करके हमारी अधीनता स्वीकार कर लीजिए। यदि दोनों बातें पसन्द नहीं हैं तो यहाँ क्यों आए? मीधा जंगल में भाग जाना चाहिए था। इस प्रकार न्याय की दुहाई देकर अपनी कायरता को छिपाने में क्या लाभ?

दधिवाहन ने निश्चय कर लिया कि जब तक शतानीक का नाम शान्त न किया जाय, युद्ध नहीं टल सकता। इसके लिए यही उचित है कि मैं राज्य छोड़ कर वन में चला-जाऊँ। यदि

उसकी अधीनता स्वीकार की गई तो इसका परिणाम और भी भयङ्कर होगा। इससे आदेशानुसार मुझे प्रजा पर अन्याय करना पड़ेगा और हर तरह में इसकी इच्छाओं को पूरा करना पड़ेगा। जिस प्रजा की रक्षा के लिए मैं इतना उत्सुक हूँ फिर उमी पर अत्याचार करना पड़ेगा।

वन जाने का निश्चय करके घोड़े पर सवार होते हुए दधिवाहन ने कहा—यदि आपकी इच्छा चम्पा पर राज्य करने की है तो आप सहर्ष कीजिए। अब तक चम्पापुरी की प्रजा का पालन मैंने किया अब आप कीजिए। मैं मोचा करता था—वृद्ध हुआ हूँ, कोई पुत्र नहीं है, राज्य का भार किसे सौंपूँगा! आपने मुझे चिन्तामुक्त कर दिया। यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है। यह कर दधिवाहन घोड़े पर बैठ कर वन को चला गया।

अपने राज्य की सीमा पर पहुँच कर उसने अपने मन्त्रियों के पास खेमर भेज दी—शतानीक की सेना बहुत बड़ी है। उससे लड़ कर अपनी मेना तथा प्रजा का व्यर्थ संहार मत कराना। अब तक चम्पा की रक्षा मैंने की थी। अब शतानीक अपने ऊपर रक्षा का भार लेना चाहता है इसलिए मेरी जगह उसी को राजा मानना।

प्रधान मन्त्री को राना की बात अच्छी न लगी। उसने मन्त्रियों की एक सभा करके निश्चय किया कि चम्पा नगरी का राज्य इस प्रकार सरलता पूर्वक शतानीक के हाथ में सौंपना ठीक नहीं है। युद्ध न करने पर मेना का क्या उपयोग होगा? उसने युद्ध की घोषणा कर दी।

दधिवाहन के चले जाने पर शतानीक क हर्ष का पारावार न रहा। बिना युद्ध के प्राप्त हुई विजय पर वह फूल उठा। उसने चम्पानगरी में तीन दिन तक लूट मचाने के लिए सेना को दे दी।

—उसी सुशी में चली आ

चम्पा नगरी के पाम पहुँचने पर उसे मालूम पड़ा कि दधिवाहन की मेना सामना करने के लिए तैयार खड़ी है। शतानीक ने भी अपनी मेना को युद्ध की आज्ञा दे दी। दोनों सेनाओं में घमासान संग्राम छिड़ गया। दधिवाहन की मेना बड़ी वीरता में लड़ी किन्तु शतानीक की मेना के सामने मुट्ठी भर बिना नायक की फौज कितनी देर ठहर सकती थी। शतानीक की मेना में परास्त हो कर उसे रणभूमि छोड़ कर भागना पड़ा।

चम्पानगरी के दरवाजे तोड़ दिए गए। शतानीक की सेना लूट मचाने लगी। मारे नगर में हाहाकार मच गया। सैनिकों का विरोध करना साक्षात् मृत्यु थी। पाश्र्विकता का नम्र ताण्डव होने लगा किन्तु उसे देख कर शतानीक प्रसन्न हो रहा था। राजसी वृत्ति अपना भीषण रूप धारण करके उसके हृदय में पैठ चुकी थी।

चम्पापुरी में एक ओर तो यह नृशंस काण्ड हो रहा था दूसरी ओर महल में बैठी हुई महारानी धारिणी वसुमती को उपदेश दे रही थी। दधिवाहन का राज्य छोड़ कर चले जाना, अपनी सेना का हार जाना, शतानीक के सैनिकों का नगरी में प्रवेश तथा लूट मार आदि सभी घटनाएँ धारिणी को मालूम हो चुकी थीं किन्तु उसने धैर्य नहीं छोड़ा। मेवकों ने आकर खबर दी कि राजमहल भी सिपाहियों द्वारा लूटा जाने वाला है, किन्तु धारिणी ने फिर भी धैर्य नहीं छोड़ा। वह वसुमती को कहने लगी— मेटी ! तेरे स्वप्न का एक भाग तो सत्य हो रहा है। चम्पापुरी दुःखसागर में डूबी हुई है। तेरे पिता वन में चले गए हैं। यह समय हमारी परीक्षा का है। इस समय घबराना ठीक नहीं है। धर्म यह सिखाता है कि भयङ्कर विपत्ति को भी अपने कर्मों का फल समझ कर धैर्य रखना चाहिए। ऐसे समय में धैर्य त्याग देने वाला कभी जीवन में सफल नहीं हो सकता। अब स्वप्न का दूसरा भाग सत्य करने का उत्तर-

दायित्व तुम पर आ पड़ा है। तेरे पिता किमी ऊँची भावना को लेकर ही उन में गए होंगे। अपने धर्म की रक्षा करना हमारा मकसद से पहला कर्तव्य है। नष्ट हुई चम्पापुरी फिर उम भरती है, गया हुआ जीवन फिर मिल सकता है। किन्तु गया हुआ धर्म फिर मिलना कठिन है। धर्म में दृढ़ रहने पर ही तुम अपने स्वप्न के उचे दृष्ट भाग को सत्य कर सकोगी।

धारिणी वसुमती को यह उपदेश दे रही थी कि इतन में गतानीक की मेना का एक रथी (रथ में लड़ने वाला योद्धा) वहाँ आ पहुँचा। वह राजमहल को लूटने के लिए वहाँ आया था। चारों ओर विविध प्रकार के रत्नों को देख कर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। पहरेदार तथा नौकर चाकर डर के मारे पहले ही भाग चुके थे, इसलिए रानी के ग़म महल तक पहुँचने में उसे कोई कठिनाई न हुई।

धारिणी को देख कर रथी चकित रह गया। उसके सौन्दर्य को देख कर वह रत्नों को भूल गया। उसे मालूम पड़ने लगा, जैसे इस जीवित स्त्रीरत्न के सामने निर्जीव रत्न कङ्कर पत्थर ही हैं। उसे तत्पू पूर्वक प्राप्त करने का निश्चय करके रथी तलवार निकाल कर धारिणी के पास जाकर कहने लगा— उठो और मेरे साथ चलो। अब यहाँ तुम्हारा कुछ नहीं है। चम्पापुरी पर गतानीक का राज्य है और यहाँ की सारी सम्पत्ति मैंनीकों की है। मेरे साथ चलो, नहीं तो यह तलवार तुम्हारा भी खून पीने में न हिचकेगी।

धारिणी ने मोचा— यह सैनिक विचारहीन हो रहा है। इस समय इसे समझाना व्यर्थ है। सम्भव है, युद्ध का नशा उतरने पर समझाने से यह मान जाय। तब तक वसुमती को भी मैं अपनी बात पूरी कह सकूँगी। यह सोच कर बिना किसी भय या दीनता के अपनी पुत्री को लेकर वह रथी के साथ हो गई और रथी के कहे अनुसार निःमङ्गल रथ में जा कर बैठ गई।

रथी अपने मन में भारी सुखों की कल्पना करता हुआ रथ के चारों ओर परदा डाल कर उमे हाँकने लगा । नगरी की ओर जाना उचित न समझ उसने सीधे वन की ओर प्रस्थान किया । रथी अपनी हवाई उमङ्गों तथा भविष्य की सुखद कल्पनाओं में डूना हुआ रथ को हाँके चला जा रहा था और अन्दर बैठी हुई धारिणी वसुमती को उपदेश दे रही थी— नेटी ! यह समय घबराने का नहीं है । तुम्हारे पिता तो हमें छोड़ कर चले ही गए । यह भी पता नहीं है कि मुझे भी तेरा साथ कब छोड़ देना पड़े, इसलिए तुम्हें वीरता पूर्वक प्रत्येक विपत्ति का सामना करने के लिए अपने ही पैरों पर खड़ी होना चाहिए । वीर अपनी रक्षा स्वयं करता है किसी दूसरे की सहायता नहीं चाहता । अपने स्वप्न के दूसरे भाग को भी तुम्हें अकेली ही पूरा करना पड़ेगा । चम्पापुरी में लाखों मनुष्यों का रक्त बहा है । निर्दोष प्रजा को लूटा गया है । चम्पापुरी पर लगे हुए इस कलङ्क को मिटाना ही उसका उद्धार है । उसका यह कलङ्क फिर युद्ध करने में न मिटेगा । युद्ध से तो वह दुगुना हो जायगा । इस लिए तुम्हें अहिंसात्मक संग्राम की तैयारी करनी चाहिए । इस संग्राम में विजय ही विजय है, कोई पराजित नहीं होता । इसमें दोनों शत्रु मिल कर एक हो जाते हैं, फिर पराजय का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता ।

हिंसात्मक युद्ध की अपेक्षा अहिंसात्मक युद्ध में अधिक वीरता चाहिए । हमारे लिए लड़ने वाले में नीचे लिखी बातें बहुत अधिक मात्रा में चाहिए । इस युद्ध में सब से पहले अपार धैर्य की आवश्यकता है । भयङ्कर से भयङ्कर कष्ट आने पर भी धैर्य छोड़ देने वाला अहिंसात्मक युद्ध नहीं कर सकता । सहिष्णुता के साथ भावना का पवित्र रहना, किसी से बैर न रखना, भय रहित होना तथा सतत परिश्रम करते जाना भी नितान्त आवश्यक है । अहिंसात्मक युद्ध

मेरे दूसरे का रक्त नहीं गढ़ाया जाता किन्तु अपने रक्त को पानी ममभर कर उसके द्वारा द्वेप रूपी फलझ्र धोया जाता है । इमलिए धर्म और न्याय की रक्षा के लिए तथा चम्पापुरी का कलझ्र मिटाने के लिए आपश्यकता पढ़न पर अपने प्राण दे देन के लिए भी तुम्हे तैयार रहना चाहिए ।

रथ को लेकर वह योद्धा घोर वन में पहुँच गया । जहाँ मनुष्यों का आना जाना नहीं था ऐसे दुर्गम तथा अनन्त प्रदेश में पहुँच कर रथ को रोक दिया । रथ के परदे उठाए और धारिणी को नीचे उतरने के लिए रुका । धारिणी और वसुमती दोनों उतर कर एक वृक्ष की छाया में बैठ गई ।

रथी ने अपनी पुरी अभिलाषा धारिणी के सामने रखी । उसे विविध प्रलोभन दिए, जन्म भर उसका दाम रने रहने की प्रतिज्ञा की, किन्तु मती शिरोमणि धारिणी अपने मतीत्व से डिगने वाली न थी ।

उसने रथी से कहा— भाई ! अपने देश और आकृति से तुम गीर मालूम पड़ते हो किन्तु तुम्हारे मुँह से निकलने वाली बातें इसके विपरीत हैं । विवाह के समय तुमने अपनी स्त्री से प्रतिज्ञा की थी कि उसके मिश्रण समार की सभी स्त्रियों को माया बहिन ममभोगे । उस प्रतिज्ञा को तोड़ कर आज वैसी ही प्रतिज्ञा तुम मेरे सामने कर रहे हो । जब तुम एक बार प्रतिज्ञा तोड़ चुके हो तो तुम्हारी दूसरी प्रतिज्ञाओं पर कौन विश्वास कर सकता है ? क्या गीर पुरुष को इस प्रकार प्रतिज्ञा तोड़ना शोभा देता है ?

विवाह में की गई प्रतिज्ञा के अनुसार मैं तुम्हारी बहिन हूँ । बहिन के साथ ऐसी बातें करते हुए क्या तुम अच्छे लगते हो ?

मैंने अपने विवाह के समय राजा दधिगहन के सिवाय सभी पुरुषों को पिता या भाई मानने की प्रतिज्ञा की थी । उसी के अनुसार तुम मेरे भाई हो । तुम अपनी प्रतिज्ञा तोड़

तो भी मैं तो तुम्हें अपना भाई ही समझूंगी। मे चत्राणी हूँ, अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकती।

यह कह कर धारिणी ने रथी के मन प्रलोभन ठुकरा दिए। रथी, का मस्तक एक बार तो लज्जा में झुक गया किन्तु उसे काम ने अन्धा बना रखा था। धर्म अविर्म, पाप पुण्य या न्याय अन्याय की बातों का उस पर कोई असर न पड़ा।

रथी ने दधिराहन को कायर, डरपोक और भगेडू बता कर रानी पर अपनी वीरता का सिक्का जमाने की चेष्टा की किन्तु वह भी बेकार गई। इन सब उपायों के व्यर्थ हो जाने पर उसने बलप्रयोग करने का निश्चय किया। धारिणी रथी के भावों को समझ गई। रथी बलपूर्वक अपनी वासना पूर्ण करने के लिए उठा ही था कि धारिणी ने अपनी जीभ पकड़ कर बाहर खींच ली। उसके मुँह से रूख की धारा बहने लगी। प्राणपत्रेरु उड़ गए। निर्जीव शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा। अपने बलिदान द्वारा धारिणी ने वसुमती तथा समस्त महिलाजगत् के मामने तो महान् आदर्श रखा ही, साथ हीमें मारथी के जीवन को भी एकदम पलट दिया। कामान्ध होने के कारण जिस पर उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ा उसे आत्मोत्सर्ग द्वारा मृत्यु का मार्ग सुझा दिया। क्रूरता और कामलिप्सा को छोड़ कर वह दयालु और मदाचारी बन गया। महान् आत्माएँ जिस कार्य को अपने जीवित काल में पूरा नहीं कर सकतीं उसे आत्मबलिदान द्वारा पूरा करती हैं।

धारिणी के प्राणत्याग को देख कर रथी भौंचका सा रह गया। वह कर्तव्यमूढ़ हो गया। उसे यह आशा न थी कि धारिणी इस तरह प्राण त्याग देगी। वह अपने को एक महामती का हत्यारा समझने लगा। पश्चात्ताप के कारण उसका हृदय भर आया। अपने को महापापी समझ कर शोक करता हुआ वह वहीं बैठ गया।

वसुमती इस हृदयद्रावक दृश्य को धीरता पूर्वक देख रही थी। मन में सोच रही थी कि माता ने मुझे जो शिक्षा दी थी, उन्हें कार्य रूप में परिणत करके मात्तात् उदाहरण रख दिया है। ऐसी माता को धन्य है। ऐसी मा को प्राप्त करके मैं अपने को भी धन्य मानती हूँ। मा ने मुझे रास्ता बता दिया, अब मेरे लिए कोई कठिनाई नहीं है। सम्भव है, यह योद्धा मा की तरह मुझे भी अपनी वामनापूर्ति का विषय बनाना चाहें। यह भी शक्य है कि मा के उदाहरण को देख कर यह मेरे लिए कोई और पडयन्त्र रहे। इस लिए पहले मे ही अपनी माता के मार्ग को अपना लूँ। इसे कुछ करने का अवसर ही क्यों दूँ।

मन में यह विचार कर वसुमती भी प्राणत्याग करने को उद्यत हुई। रथी उसके डरादे से डर गया। दौड़ा हुआ वसुमती के पास आया और कहने लगा— बेटा ! मुझे क्षमा करो। मैंने जो पाप किया है वह भी इतना भयङ्कर है कि जन्म जन्मान्तरों में भी छुटकारा होना मुश्किल है। अपने प्राण देकर मेरे उस पाप को अधिकृत न पड़ाओ। तेरी माता महासती थी, उसके पतिदान ने मेरी आँखें खोल दी हैं। मुझ पर विश्वास करो। मैं आज से तुम्हें अपनी पुत्री जानूँगा। मुझे क्षमा करो। यह कह कर रथी वसुमती के पैरों पर गेर पड़ा और अपने पाप के लिए गार २ पश्चात्ताप करने लगा।

वसुमती को निश्चय हो गया कि रथी के विचार अब पहले तरीके नहीं रहे। उसने रथी को मान्त्वना दी। इसके बाद दोनों ने मिल कर धारिणी का दाह संस्कार किया।

वसुमती को ले कर रथी अपने घर आया। रथी की स्त्री को माता समझ कर वसुमती ने उसे प्रणाम किया किंतु रथी की स्त्री वसुमती को देखते ही विचार में पड़ गई। वह सोचने लगी— मैंने इस सुन्दर कन्या को यहाँ क्यों लाए हैं ? मालूम पड़ता

इमके रूप पर मोहित हो गए हैं। उमे अपने पति पर सन्देह हो गया किन्तु किसी प्रमाण के बिना कुछ कहने का साहस न कर सकी।

वसुमती के आते ही रथी के घर का रंग ढंग त्रिल्लुल बदल गया। मग चीजें माफ़ सुथरी और व्यवस्थित रहने लगीं। नाकर चाकर तथा परिवार के सभी लोग प्रसन्न रहने लगे। वसुमती के गुणों में आकृष्ट होकर सभी लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। रथी उसके गुणों को बखानते न थकता था। उसकी स्त्री को अब कुछ भी काम न करना पड़ता था फिर भी उसकी आँखों में वसुमती मदा सटका करती थी। वह सोच रही थी, मेरे पति दिन प्रति दिन वसुमती की ओर झुक रहे हैं। कहीं ऐसा न हो कि वह मेरा स्थान छीन ले। इसलिए जितना शीघ्र हो सके, इसे घर से निकाल देना चाहिए। मन में यह निश्चय करके वह मौका ढूँढने लगी।

वसुमती घर के काम में इतनी व्यस्त रहती थी कि अपने खान पान का भी ध्यान न था। किसी काम में किसी प्रकार की गल्ती न होने देती थी। इतने पर भी रथी की स्त्री उसके प्रत्येक काम में गल्ती निकालने की चेष्टा करती। उसके किए हुए काम को स्वयं त्रिगाड कर उसी पर दोष मढ़ देती। इतने पर भी वसुमती लुब्ध न होती। वह उत्तर देती—माताजी! भूल में ऐसा हो गया। भविष्य में सावधान रहूँगी। रथी की स्त्री को विश्वास था कि इस प्रकार प्रत्येक काय में गल्ती निकालने पर वसुमती या तो स्वयं तंग हो कर चला जाएगी या किसी दिन मेरा विरोध करेगी और मैं स्वयं झगडा सडा करके इसे घर से निकलवा दूँगी किन्तु उसका यह उपाय व्यर्थ गया। वसुमती ने क्रोध पर विजय प्राप्त कर रखी थी, इस लिए मारथी की स्त्री के कड़वे वचन और झूठे आरोप उसे विचलित न कर सके।

वसुमती की कार्यव्यस्तता देख कर एक दिन मारथी ने उमे

कहा—बेटी ! तुम राज महल में पली हो । तुम्हाग शरीर इस योग्य नहीं है कि घर के कामों में इस तरह पिमा करो । तुम्हें अपने स्वास्थ्य और खान पान का भी ध्यान रखना चाहिए ।

रथी की इस बात को उसकी स्त्री ने सुन लिया । उसे विश्वास हो गया कि वाम्बत में मेरे पति इस पर आसक्त हो गए हैं । क्रोध से आँखें लाल करके वह वसुमती के पाम आई और कहने लगी—क्यों ! मुझे ठगने चली है । ऊपर से तो मुझे मा कहती है और दिल में मौत बनने की इच्छा है । अच्छा हुआ मे समय पर चेत गई । अब तुम्हें घर से निकलना कर ही अब जल ग्रहण करूँगी । वसुमती के विरुद्ध वह जोर जोर से रकने लगी । घर के लोग उसके इस रूप को देख कर चकित रह गए । रथी को मालूम पडा तो वह भी दौडा हुआ आया और अपनी स्त्री को समझाने लगा । उसके समझाने पर वह अधिक जिगड गई और कहने लगी—अब तो सारा दोष मेरा ही है, क्योंकि मैं अच्छी नहीं लगती । मैं अच्छी लकती तो इसे क्यों लाते ! अब मैं निश्चय कर चुकी हूँ कि या तो इसे घर से निकाल दो नहीं तो खाना पीना छोड कर अपने प्राण दे दूँगी । केवल निकाल देने से ही मुझे सन्तोष न होगा । लडाई से लौटे हुए सभी योद्धा चम्पापुरी को लूट कर बहुत धन लाए हैं । आप कुछ भी नहीं लाए । इस लिए इसे बाजार में बेच कर मुझे बीस लाख मोहरें लाकर दो । तभी अब जल ग्रहण करूँगी ।

रथी ने अपनी स्त्री को बहुत समझाया किन्तु वह न मानी । यद्यपि धारिणी और वसुमती के आदर्श से रथी का स्वभाव बहुत कोमल हो गया था फिर भी उसे क्रोध आ गया । उसने अपनी स्त्री को कहा—ऐसी सदाचारिणी और सेवापरायण पुत्री को मैं अपने घर से नहीं निकाल सकता । तुम्हीं मेरे घर से निकल जाओ ।

बढ़ने लगी ।

इमके रूप पर मोहित हो गए हैं। उसे अपने पति पर सन्देह हो गया किन्तु किसी प्रमाण के बिना कुछ कहने का साहम न कर सकी।

वसुमती के आते ही रथी के घर का रंग ढंग मिल्कुल बदल गया। मन चीजें भाफ सुथरी और व्यवस्थित रहने लगीं। नाक चाकर तथा परिवार के सभी लोग प्रमत्त रहने लगे। वसुमती के गुणों से आकृष्ट होकर सभी लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। रथी उसके गुणों को बखानते न थकता था। उसकी स्त्री को अब कुछ भी काम न करना पड़ता था फिर भी उसकी आँखों में वसुमती मदा खटका करती थी। वह सोच रही थी, मेरे पति दिन प्रति दिन वसुमती की ओर झुक रहे हैं। कहीं ऐसा न हो कि वह मेरा स्थान छीन ले। इसलिए जितना शीघ्र हो सके, इसे घर से निकाल देना चाहिए। मन में यह निश्चय करके वह मौका ढूँढने लगी।

वसुमती घर के काम में इतनी व्यस्त रहती थी कि अपने खान पान का भी ध्यान न था। किसी काम में किसी प्रकार की गल्ती न होने देती थी। इतने पर भी रथी की स्त्री उसके प्रत्येक काम में गल्ती निकालने की चेष्टा करती। उसके किए हुए काम को स्वयं बिगाड़ कर उसी पर दोष मढ़ देती। इतने पर भी वसुमती चुब न होती। वह उत्तर देती—माताजी! भूल से ऐसा हो गया। भविष्य में सावधान रहूँगी। रथी की स्त्री को विश्वास था कि इस प्रकार प्रत्येक कार्य में गल्ती निकालने पर वसुमती या तो स्वयं तग हो कर चला जाएगी या किसी दिन मेरा विरोध करेगी और मैं स्वयं झगड़ा खड़ा करके इसे घर से निकलवा दूँगी किन्तु उसका यह उपाय व्यर्थ गया। वसुमती ने क्रोध पर विजय प्राप्त कर रखी थी, इस लिए मारथी की स्त्री के कड़वे वचन और झूठे आरोप उसे विचलित न कर सके।

वसुमती की कार्यव्यस्तता देख कर एक दिन मारथी ने उसे

रुहा—बेटी ! तुम राज महल में पली हो । तुम्हारा शरीर इस योग्य नहीं है कि घर के कामों में इस तरह पिसा करो । तुम्हें अपने स्वास्थ्य और खान पान का भी ध्यान रखना चाहिए ।

रथी की इस बात को उमकी स्त्री ने सुन लिया । उसे विश्वास हो गया कि वास्तव में मेरे पति इस पर आसक्त हो गए हैं । क्रोध से आँखें लाल करके वह वसुमती के पास आई और कहने लगी—क्यों ! मुझे ठगने चली है । ऊपर से तो मुझे मा कहती है और दिल में मौत बनने की इच्छा है । अच्छा हुआ म समय पर चेत गई । अब तुम्हें घर से निकाला कर ही अन्न जल ग्रहण करूँगी । वसुमती के पिरुद्ध वह जोर जोर से मरने लगी । घर के लोग उसके इस रूप को देख कर चकित रह गए । रथी को मालूम पड़ा तो वह भी दौड़ा हुआ आया और अपनी स्त्री को समझाने लगा । उसके समझाने पर वह अधिक बिगड़ गई और कहने लगी—अब तो सारा दोष मेरा ही है, क्योंकि मैं अच्छी नहीं लगती । मैं अच्छी लगूँगी तो इसे क्यों लाते ! अब मैं निश्चय कर चुकी हूँ कि या तो इसे घर से निकाल दो नहीं तो खाना पीना छोड़ कर अपने प्राण दे दूँगी । केवल निकाल देने से ही मुझे सन्तोष न होगा । लडाई से लौटे हुए सभी योद्धा चम्पापुरी को लूट कर बहुत धन लाए हैं । आप कुछ भी नहीं लाए । इस लिए इसे बाजार में बेच कर मुझे बीस लाख मोहरें लाकर दो । तभी अन्न जल ग्रहण करूँगी ।

रथी ने अपनी स्त्री को बहुत समझाया किन्तु वह न मानी । यद्यपि 'धारिणी' और वसुमती के आदर्श से रथी का स्वभाव बहुत कोमल हो गया था फिर भी उसे क्रोध आ गया । उसने अपनी स्त्री को कहा—ऐसी सदाचारिणी और सेवापरायण पुत्री को मैं अपने घर से नहीं निकाल सकता । तुम्हीं मेरे घर से निकल जाओ । दोनों में तकरार बढ़ने लगी ।

वसुमती ने सोचा—मेरे कारण ही यह विरोध खड़ा हुआ है। इस लिए मुझे ही इसे निपटाना चाहिए। यह मोच कर वह रथी की स्त्री से कहने लगी—माताजी ! आपको घराने की आवश्यकता नहीं है। आप की इच्छा शीघ्र पूरी हो जायगी।

इसके बाद उसने रथी से कहा—पिताजी ! इसमें नाराज होने की कोई बात नहीं है, अगर माताजी बीम लाख मोहरें लेकर मुझे छुटकारा दे रही हैं तो यह मेरे लिए हर्ष की बात है। इनका तो मुझ पर महान् उपकार है। इनका मन्देह दूर करना भी हम दोनों के लिए जरूरी है इस लिए आप मेरे साथ बाजार में चलिए और मुझे बेच कर माताजी का मन्देह दूर कीजिये। अगर आपको मेरे मतीत्व पर विश्वास है तो कोई मेरा कुछ नहीं पिगाड़ सकता।

रथी वसुमती को छोड़ना नहीं चाहता था किन्तु वसुमती ने अपने व्यवहार और उपदेश द्वारा उसे इतना प्रभावित कर रक्खा था कि वह उसे अपनी आराध्य देवी मानता था। बिना कुछ कहे उसकी बात को मान लेता था। वह बोला—बेटी ! मेरा दिल तो नहीं मानता कि तुम मरीखी मझलमयी साध्वी सती कन्या को अलग करूँ किन्तु तुम्हारे मामने कुछ भी कहने का साहम नहीं होता, इस लिए इच्छा न होने पर भी मान लेता हूँ। मुझे दृढ़ विश्वास है, तुम जो कुछ कहोगी उसमें सभी का कल्याण होगा।

रथी और वसुमती बाजार के लिए तैयार हो गए। वसुमती ने रथी की स्त्री को प्रणाम किया और कहा मेरे कारण आपको बहुत कष्ट हुआ है इसके लिए मुझे क्षमा कीजिए। उसने परिवार के सभी लोगों से नम्रता पूर्वक विदा ली, दासी के रूपड़े पहने और रथी के साथ बाजार का रास्ता लिया।

बाजार के बागहे में खड़ी होकर वसुमती स्वयं चिल्लाने लगी—

भाइयों ! मैं दाम्नी हूँ, विक्राने के लिए आई हूँ। दूमरी और रथी एक कोने पर खड़ा आँसू बहा रहा था। वसुमती ने अलग होने के लिए अपने भाग्य को कोम रखा था।

वसुमती के चेहरे को देख कर सभी लोग कहते—यह किमी उड़ घर की लड़की मालूम पड़ती है। कौतूहल पश उसके पास जाकर पूछते—देवि ! तुम कौन हो ? यहाँ क्यों खड़ी हो ?

वसुमती उत्तर देती—मैं दाम्नी हूँ। यहाँ विक्राने के लिए आई हूँ। मेरी कीमत बीस लाख मोहरों हैं। मेरे पिता को कीमत देकर जो चाहे मुझे खरीद सकता है। मैं घर का मारा काम करूँगी। घर को सुधार दूँगी। किमी प्रकार की बुटि न रहने दूँगी। उमने अपनी वास्तविकता को बताना ठीक न समझा।

यद्यपि वसुमती की सौम्य आकृति को देख कर सभी उसे अपने घर ले जाना चाहते थे किन्तु एक दाम्नी के लिए इतनी उड़ी रकम देना किमी ने ठीक न समझा।

उसी समय एक बेग्या पालकी में बैठी हुई वहाँ आई। वह नगर की प्रसिद्ध बेग्या थी। नृत्य, गान और दूमरी कलाओं में उसके समान कोई न था। नगर में वह 'नगरनायिका' के रूप में प्रसिद्ध थी। अपने पाप के पेशे से अपार धन बटोर चुकी थी।

वसुमती को देख कर उसे अपार हर्ष हुआ। साथ में आश्चर्य भी हुआ कि ऐसी सुन्दरी बाजार में बिक रही है। बेग्या ने सोचा—ऐसी सुन्दरी को पाकर मेरा धन्य चमक उठेगा। थोड़े ही दिनों में मारी रकम जम्मा हो जायेगी। इसलिए मुझे मागे दाम देने को तैयार हो गई।

उमने वसुमती से कहा—तुम मेरे साथ चलो। साथ में अपने पिता को भी ले लो। मैं उन्हें बीस लाख मोहरों दे दूँगी।

बेग्या खूब मजी हुई थी। रेशमी वस्त्र पहिन रखे थे।

पणों से लदी थी। उसकी बोली और चाल ढाल में बनावट थी। वसुमती उसकी भावभंगी से समझ गई कि यह कोई भद्र औरत नहीं है। उसने वेश्या से पूछा— माताजी ! आप मुझे किस कार्य के लिए खरीदना चाहती है ? आपके घर का आचार क्या है ?

वेश्या ने उत्तर दिया— तू तो भोली है। नित्य नए शृङ्गार करना, नए नए वस्त्र तथा आभूषणों से अपने शरीर को सुसज्जित करना तथा नित्य नए सुख भोगना हमारे यहाँ का आचार है। मेरे घर पर तुझे दासीपना न करना होगा किन्तु बड़े बड़े पुरुषों को अपना दास बनाए रखना होगा। मैं अपनी नृत्य और गान कला तुझे सिखा दूँगी। फिर ऐसा कौन है जो तेरे आगे न झुक जाय।

वेश्या की बात समाप्त होते ही वसुमती ने कहा— माताजी ! आप मुझे जिस उद्देश्य से खरीदना चाहती हैं और जो कार्य लेना चाहती हैं वह मुझ से न होगा। मेरा और आपका आचार एक दूसरे से विरुद्ध है। आप पुरुषों को विभ्रम और मोह में डाल कर पतन की ओर ले जाना चाहती हैं और मैं उन्हें इस मोह से निकाल कर ऊँचा उठाना चाहती हूँ। जिम जाल में आप उन्हें फँसाना चाहती हैं, मैं उमसे छुड़ाना चाहती हूँ। इसलिए मुझे खरीदने से आपको कोई लाभ न होगा। मैं आपके साथ नहीं चलूँगी।

वेश्या ने वसुमती को सब तरह के प्रलोभन दिए। उसे एक दासी की हालत से उठा कर सामारिक सुखों की चरम सीमा पर पहुँचाने का वचन दिया किन्तु वसुमती अपने सतीत्व के सामने स्वर्गीय भोगों को भी तुच्छ समझती थी। संसार के सारे सुख इकट्ठे होकर भी उसे धर्म से विचलित न कर सकते थे। उसने वेश्या के सभी प्रलोभनों को ठुकरा दिया।

वेश्या ने सोचा— यह लड़की इस प्रकार न मानेगी। इस भीड़ में खड़े हुए बड़े बड़े आदमी मेरी हाँ में हाँ मिलाने वाले हैं। जिसे

मे न्याय कर दूँ वही उनके लिए न्याय है। सभी मेरे इशारे पर नाचते हैं। किसी में मेरा विरोध करने का साहस नहीं है, इस लिए इसे जबरदस्ती पकड़ कर ले चलना चाहिए। वहाँ पहुँचने के बाद अपने आप ठीक हो जाएगी।

यह मोच कर वेश्या ने उसमें कहा—तुम यहाँ बिकने के लिए आई हो। नीम लाख मोहरें तुमने अपनी कीमत स्थापित बताई है। जो इतनी मोहरें दे दे उसका तुम पर अधिकार हो जाता है। फिर वह तुम्हें कहीं ले चले और कुछ काम ले, तुम्हें विरोध करने का कोई अधिकार नहीं रह जाता। किसी हुई वस्तु पर खरीदने वाले का पूर्ण अधिकार होता है। मैंने तुम्हें खरीद लिया है। तुम्हारे आराम और सन्मान के लिए अब तक मैं तेरी खुशामद करती रही। यदि तुम ऐसे न चलोगी तो मे जबरदस्ती ले चलूँगी। यह कह कर वेश्या ने भीड़ पर कटाव भरी नजर फेंकी। उसके समर्थक कुछ लोग हाँ में हाँ मिला कर कहने लगे—आप बिल्कुल ठीक कहती हैं आपका पूरा अधिकार है। आप इससे अपनी इच्छानुसार कोई भी काम ले सकती हैं।

लोगों की बात सुन कर वसुमती मन ही मन सोचने लगी—ये भोले प्राणी किस प्रकार कामान्ध होकर पाप का समर्थन कर रहे हैं। प्रभो ! इन्हें मद्बुद्धि प्राप्त हो। उसने प्रकट में कहा—यह भीड़ ही नहीं अगर साग संसार प्रतिकूल हो जाय तो भी मुझे धर्म में विचलित नहीं कर सकता।

वसुमती की दृढ़ता को देख कर भीड़ में से कुछ लोग उसके भी समर्थक बन गए और कहने लगे—कोई किसी पर जबरदस्ती नहीं कर सकता। वेश्या के साथ जाना या न जाना इसकी इच्छा पर निर्भर है।

वेश्या के समर्थक अधिक थे इस लिए उसका साहस बढ़ गया उसने अपने नौकरों को आज्ञा दे दी और स्वयं वसुमती को

वसुमती को उठाने के लिए वह आगे बढ़ी। इतने में बहुत से बन्दर वेश्या पर दूट पड़े। उसके शरीर को नोच डाला। वेश्या सहायता के लिए चिल्लाई किन्तु उसके नाँकर तथा समर्थक बन्दरों से डरकर पहले ही भाग चुके थे। कोई उसकी सहायता के लिए न आया।

बन्दरों ने वेश्या को लोहलुहान कर दिया। उसके करुण चीत्कार को सुन कर वसुमती से न रहा गया। उसने बन्दरों को डाट कर कहा—ठटो! माता को छोड़ दो। इसे क्यों मर दे रहे हो? वसुमती के डाटते ही सभी बन्दर भाग गए।

वेश्या के पास आकर वसुमती ने उसे उठाया और मान्त्वना देते हुए उसके शरीर पर हाथ फेरा। वेश्या के मारे शरीर में भयङ्कर वेदना हो रही थी किन्तु वसुमती का हाथ लगते ही शान्त हो गई।

कृतज्ञता के भार में दबी हुई वेश्या आँखें नीची किए सोच रही थी कि अपकारी का भी उपकार करने वाली यह कोई देवी है। इसके हाथ का स्पर्श होते ही मेरी सारी पीड़ा भाग गई। वास्तव में यह कोई महासती है।

बन्दरों के चले जाने पर वेश्या के परिजन और समर्थक फिर वहाँ इकट्ठे हो गए और विविध प्रकार से महानुभूति दिखाने लगे। वेश्या के हृदय में वसुमती द्वारा किया हुआ उपकार घर कर चुका था इस लिए सखी महानुभूति उसे अच्छी न लगी।

अपने व्यवहार पर लजित होते हुए वेश्या ने वसुमती से कहा—देवि! मामारिक पागनाओं में पली हुई होने के कारण मैं आपके वास्तविक स्वरूप को न जान सकी। मैंने आपकी शिक्षा को मजाक समझा, सदाचार को ढोंग समझा। धर्म, न्याय और सतीत्व का मेरे हृदय में कोई स्थान न था। इसी कारण अज्ञानतावश मैंने आपके साथ दुर्व्यवहार किया। अहिंसा और सतीत्व का साक्षात् आदर्श कर आपने मेरी आँखें खोल दी। मैं आपके अश्रु से कभी मुक्त

नहीं हो सकती। आपके साथ किए गए दुर्व्यवहार के लिए मुझे पश्चात्ताप हो रहा है। आपकी आत्मा महान् है। आशा है, अज्ञानता वश किए गए उस अपराध के लिए आप मुझे क्षमा कर देंगी।

अब मैंने अपने पाप के पेशे को छोड़ देने का निश्चय कर लिया है। आपने मेरे जीवन की धारा को बदल दिया। यह मेरे गौरव की बात होती यदि आपके चरणों से मेरा घर पवित्र होता। किन्तु उस गन्दे, नारकीय वातावरण में आप सरीखी पवित्र आत्मा को ले जाना मैं उचित नहीं समझती। यह कह कर अपने अपराध के लिए बार बार क्षमा मागती हुई वेश्या अपने घर चली गई। वसुमती तथा वेश्या की बात पिजली के समान सारे शहर में फैल गई।

नगरी में धनावह नाम का एक धर्मात्मा सेठ रहता था। उसके कोई सन्तान नहीं थी। वसुमती की प्रशंसा सुन कर उसकी इच्छा हुई कि ऐसी धर्मात्मा सती मेरे घर रहे तो कितना अच्छा हो। उसके रहने से मेरे घर का वातावरण पवित्र हो जायगा और मैं निर्विघ्न धर्माचरण कर सकूँगा।

उत्तरोत्तर घटनाओं को देख कर रथी का वसुमती की ओर अधिकाधिक झुकाव हो रहा था। ऐसी महासती को नेचना उसे बहुत बुरा लग रहा था। वह बार बार वसुमती से आपस लौटने की प्रार्थना करने लगा और वसुमती उसे मान्यता देने लगी।

इतने में धनावह सेठ वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने रथी को मोहरें देना स्वीकार कर लिया और वसुमती को अपने घर ले जाने के लिए कहा। वसुमती ने पूछा—पिताजी! आपके घर का क्या आचार है?

सेठ ने उत्तर दिया—पुत्री! यथाशक्ति धर्म की आराधना करना ही मेरे घर का आचार है। मैं बारह व्रतधारी थावरूँ हूँ। घर पर आये हुए अतिथि को विमुख न जाने देना मेरा धार्मिक कार्यों में मेरी सहायता करना तुम्हारा कार्य

तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे यहाँ तुम्हारे मत्स्य और शील के पालन में किसी प्रकार की बाधा न होगी।

वसुमती धनावह सेठ के साथ जाने को तैयार हो गई और रथी से कहने लगी— पिताजी ! आप मेरे साथ चलिए और बीस लाख मोहरें लाकर माताजी को दे दीजिए।

रथी के हृदय में अपार दुःख हो रहा था। उसके पैर आंगे नहीं बढ़ रहे थे। धीरे धीरे सभी धनावह सेठ के घर आए। धनावह ने तिजोरी में बीस लाख मोहरें निकाल कर रथी के सामने रख दी और कहा— आप इन्हें ले लीजिए।

रथी ने कहा— सेठ माहेव ! अपनी इस पुत्री को अलग करने की मेरी इच्छा नहीं है किन्तु मेरे घर के कलुषित वातावरण में यह नहीं रहना चाहती। अगर उसकी इच्छा है तो आपके घर रहे किन्तु उसे बेचकर मैं पाप का भागी नहीं बनना चाहता। धनावह सेठ मोहरें देना चाहता था किन्तु रथी उन्हें लेना नहीं चाहता था।

यह देखकर वसुमती रथी से कहने लगी— मेठजी और आप दोनों मेरे पिता हैं। मैं दोनों की कन्या हूँ। इस नाते आप दोनों भाई भाई हैं। मोड़ों में खरीदने और बेचने का प्रश्न ही नहीं होता। बीस लाख मोहरें आप अपने भाई की तरफ से माताजी को भेंट दे दीजिए। यह कह कर उसने धनावह सेठ के नौकरों द्वारा मोहरें रथी के घर पहुँचवा दीं। रथी और धनावह सेठ का सम्बन्ध मटा के लिए दृढ़ हो गया।

धनावह सेठ की पत्नी का नाम मूला था। उसका स्वभाव सेठ के समान विपरीत था। सेठ जितना नम्र, मेरल, धार्मिक और दयालु था, मूला उतनी ही क्रूर, कपटी और निर्दय थी। मठ दया, दान आदि धार्मिक कार्यों को पसन्द करता था किन्तु मूला को इन सब बातों में घृणा थी।

वसुमती को अपने माथ लेकर सेठ ने मूला में कहा— हमारे माँभाग्य में यह गुणवती कन्या प्राप्त हुई है। इसे अपनी पुत्री समझना। इसके रहने से हमारे घर में धर्म, प्रेम और सुख की वृद्धि होगी।

मूला ऊपर से तो मेठ की बातें सुन रही थी किन्तु हृदय में दुमरी ही बातें मोच रही थी। सेठजी इस सुन्दरी को क्यों लाए हैं ? माथ में इसकी प्रशंसा भी क्यों कर रहे हैं ? ऊपर से तो पुत्री कह रहे हैं किन्तु हृदय में कुछ और बात है। भला इसके मौन्दर्य को देख कर किमका चित्त विचलित न होगा।

हृदय के भावों को मन ही में दबा कर मूला ने सेठ की बात ऊपर से स्वीकार कर ली। वसुमती मेठ के घर रहने लगी। उसके कार्य, व्यवहार तथा चारित्र्य में घर के सभी लोग प्रसन्न रहने लगे। सभी उसकी प्रशंसा करने लगे। मेठजी स्वयं भी उसके कार्यों को मराहा करते थे किन्तु मूला पर इन मन का उल्टा असर पड़ रहा था।

एक दिन सेठ ने वसुमती से पूछा— बेटी ! तेरा नाम क्या है ? पिताजी ! मैं आपकी पुत्री हूँ। पुत्री का नाम वही होता है जो माता पिता रखें। वसुमती ने उत्तर दिया।

बेटी ! मैंने तेरी सारी बातें सुन ली हैं। जैसे चन्दन काटने वाले को भी सुगन्ध और शान्ति देता है इसी प्रकार तुम अपकारी पर भी उपकार करने वाली हो, इसलिए मैं तुम्हारा नाम चन्दनवाला रखता हूँ। सेठ ने पुराने नाम की छानबीन करना उचित न समझा। सभी लोग वसुमती को चन्दनवाला कहने लगे।

एक दिन चन्दनवाला स्नान के बाद अपने बाल सुखा रही थी। इतने में मेठजी बाहर से आए और अपने पैर धोने के लिए पानी मांगा। चन्दनवाला गरम पानी, बैठने के लिए चौकी तथा पैर धोने का बर्तन ले आई और बोली—पिताजी ! आप यहाँ विराजें। मैं आपके पैर धो देती हूँ।

ने और भी कठोर दण्ड देने का निश्चय किया। चन्दनवाला के मारे कपड़े उतार लिए और पुराने मैले कपड़े की एक काँछ लगा दी। हाथों में हथकड़ी और पैरों में बेड़ी डाल दी। इसके बाद एक पुराने भैर (तहखाने, तलधर) में उसे बन्द करके ताला लगा दिया। मूला को विश्वास हो गया कि चन्दनवाला वहीं पड़ी २ मर जाएगी। उसे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि मौत बन कर उसके सुख सुहाग में बाधा डालने वाली अब नहीं रहेगी।

इतने में उसके हृदय में भय का संचार हुआ। सोचने लगी—अगर कोई यहाँ आ गया और चन्दनवाला के विषय में पूछने लगा तो क्या उत्तर दिया जाएगा? मकान के ताला बन्द करके वह अपने पीहर चली गई। मोचा—तीन चार दिन तो यह बात ठकी ही रहेगी, बाद में कह दूँगी कि वह किसी के साथ भाग गई।

भैर में पड़े २ चन्दनवाला को तीन दिन हो गए। उस समय उसके लिए भगवान् के नाम का ही एक मात्र सहारा था। वह नवकार मन्त्र का जाप करने लगी। उसी में इतनी लीन थी कि भूख प्यास आदि सभी कष्टों को भूल गई। नवकार मन्त्र के स्मरण में उसे अपूर्व आनन्द प्राप्त हो रहा था। मूला सेठानी को वह धन्यवाद दे रही थी जिसकी कृपा से ईश्वरभजन का ऐसा सुयोग मिला।

चौथे दिन दोपहर के समय धनावह सेठ बाहर से लौटे। देखा, घर का ताला बन्द है। सेठानी या नौकर चाकर किसी का पता नहीं है। मेठजी आश्चर्य में पड़े गए। उनके घर का द्वार कभी बन्द न होता था। अतिथियों के लिए मदा खुला रहता था।

सेठ ने सोचा—मूला अपने पीहर चली गई होगी। नौकर चाकर भी इधर उधर चले गए होंगे, किन्तु चन्दनवाला तो कहीं नहीं जा सकती। पड़ोसियों में पूछने पर मालूम पड़ा कि तीन दिन में उसका कोई पता नहीं है। इतने में एक नौकर बाहर से आया। पूछने पर

उसने कहा—सेठानीजी ने हम सब को बाहर भेज दिया था। केवल चन्दनमाला और मेठानी ही यहाँ रही थी। डमक बाद क्या हुआ, यह मुझे मालूम नहीं है। मेठ मूला के स्वभाव की मलीनता और उसकी चन्दनमाला के प्रति दुर्भावना में परिचित थे। अनिष्ट की सम्भावना में उनका हृदय काँप उठा।

धनाग्रह सेठ ने मूला के पास नौकर भेजा। सेठ का आगमन सुन कर एक बार तो मूला का हृदय धक सा रह गया किन्तु जल्दी से सम्भल कर उसने नौकर से कहा मुझे अभी दो चार दिन यहाँ काम है। तुम घर की चाबी ले जाओ और सेठजी को दे दो। मूला ने सोचा—दो चार दिन में चन्दनमाला मर जायगी फिर उसका कोई भी पता न लगा सकेगा पूछने पर कह दूँगी, घर से चोरी करके वह किसी पुरुष के साथ भाग गई।

नौकर चाबी लेकर चला आया। मेठ ने घर खोला। चन्दनमाला जब कहीं दिखाई न दी तो उसका नाम ले कर जोर जोर से पुकारना शुरू किया।

चन्दनमाला ने सेठ की आज्ञा पहिचान कर क्षीण स्वर में उत्तर दिया—पिताजी ! मैं यहाँ हूँ। आवाज के अनुसन्धान पर सेठ धीरे २ भँरि के पास पहुँच गया। किनाड खोल कर अंधेरे में टटोलता हुआ वह चन्दनमाला के पास आ पहुँचा। यह जान कर वह बड़ा दुखी हुआ कि चन्दनमाला के हथकड़ी और घेड़ियाँ पड़ी हुई हैं। धीरे २ उसे उठाया और भँरि से बाहर निकाला। चन्दनमाला के गँडे हुए सिर, शरीर पर लगी हुई काँच हथकड़ियों से जकड़े हुए हाथ तथा घेड़ियों से कसे हुए पैर देख कर सेठ के दुःख की मीमा न रही। वह जोर २ में रोने लगा। विलाप करते हुए उसने कहा—वह दुष्टा तो तेरे प्राण ही ले ॐ थी। मेरा भाग्य अच्छा था, जिससे तुझे जीवित देख सका

बड़ा पापी हूँ, जिनके घर में तेरे ममान मती खी जो ऐसा महान कष्ट उठाना पड़ा।

चन्दनवाला सेठ को घैर्य बंधाने और मान्त्वना देने लगी। उसने बार बार कहा—पिताजी इसमें आपका और माताजी का कुछ दोष नहीं है। यह तो मेरे पिछले किए हुए कर्मों का फल है। किए हुए कर्म तो भोगने ही पड़ते हैं। इसमें कर्मने वाले के सिवाय और किसी का दोष नहीं होता।

मेठजी शोकसागर में डूब रहे थे। उन पर चन्दनवाला की किसी बात का असर न हो रहा था। मेठजी का ध्यान किमी कार्य की ओर खींच कर उनका शोक दूर करने के उद्देश्य में चन्दनवाला ने कहा—पिताजी! मुझे भूल लगी है। कुछ खाने को दीजिए। मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जो वस्तु मरने पहले आपके हाथ में आयेगी उमी से पायणा करूँगी, इस लिए नई तैयार की हुई या बाहर से लाई हुई कोई वस्तु मैं स्वीकार न करूँगी।

मेठजी रसोई में गए किन्तु वहाँ ताला लगा हुआ था। इधर उधर देखने पर एक छप में पड़े हुए उड़द के बाकले दिखाई दिए। वे घोड़ों के लिए उवाले गए थे और थोड़े में बाकी बच गए थे। चन्दनवाला की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए सेठ उन्हीं को ले आया। चन्दनवाला के हाथ में बाकले देकर मेठ बेड़ी तोड़ने के लिए लुहार को बुलाने चला गया।

चन्दनवाला बाकले लेकर देहली पर बैठ गई। उसका एक पैर देहली के अन्दर था और दूसरा बाहर। पायणा करने में पहले उसे अतिथि की याद आई। वह मिचारने लगी—मैं प्रतिदिन अतिथियों को देकर फिर भोजन करती हूँ। यदि इस समय कोई निर्ग्रन्थ माधु यहाँ पधार जाय तो मेरा अहोभाग्य हो। उन्हें शुद्ध भिक्षा देकर मैं अपना जीवन सफल करूँ। देहली पर बैठी हुई चन्दनवाला

इस प्रकार भावना भा रही थी ।

उन दिनों श्रमण भगवान् महावीर छत्रस्थ अवस्था में थे । कैवल्यप्राप्ति के लिए कठोर साधना कर रहे थे । लम्बी तथा उग्र तपस्याओं द्वारा अपने शरीर को सुखा डाला था । एक बार उन्होंने अतिकठोर अभिग्रह धारण किया । उनका निश्चय था—

राजकन्या हो, अदिवाहिता हो, मदाचारिणी हो, निरपराध होने पर भी जिसके पावों में नेडियों तथा हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी हुई हों, सिर मुण्डा हुआ हो, शरीर पर काछ लगी हुई हो, तीन दिन का उपवास किए हो, पारण के लिए उडद के बाकलें खूप में लिए हो, न घर में हो, न राहर हो, एक पैर देहली के भीतर तथा दूसरा बाहर हो, दान देने की भावना से अतिथि की प्रतीक्षा कर रही हो, प्रसन्न मुख हो और आँखों में आँसू भी हों, इन तरह बातों के मिलने पर ही आहार ग्रहण करूँगा । अगर ये बातें न मिलें तो आजीवन अनशन है ।

आहार की गणेश्या में फिरते हुए भगवान् को पाँच मास पच्चीस दिन हो गए किन्तु अभिग्रह की रातें पूरी न हुईं । सभी लोग भगवान् की शरीर रक्षा के लिए चिन्तित थे । साथ में उनके कठिन अभिग्रह के लिए आश्चर्यचकित भी थे ।

धूमते धूमते भगवान् कौशाम्बी आ पहुँचे । नगरी में आहार की गणेश्या करते हुए धनायह सेठ के घर आए । चन्दनबाला को उस रूप में बैठी हुई देखा । अभिग्रह की और बातें तो मिल गईं किन्तु एक बात न मिली— उसका आँखों में आँसू न थे । भगवान् वापिस लौटने लगे ।

उन्हें वापिस लौटते देखा चन्दनबाला की आँखों में आँसू आ गए । वह अपने भाग्य को कोसने लगी कि ऐसे महान् अतिथि आकर भी मेरे दुर्भाग्य से वापिस लौट रहे हैं । भगवान् ने अन्-

नरु पीछे देखा। उमकी आँखों में आँसू टपक रहे थे। तेरहवीं बात भी पूरी होगई। उन्होंने चन्दनवाला के पास आकर हाथ फैला दिए। सांसारिक वामनाओं में कलुषित हृदय वाली मारथी की स्त्री और मूला जिसे अनाथ, अवारागिर्द और अष्ट समझती थी, त्रिलोक पूजित भगवान् उसी के मामने भिक्षुक बन कर खड़े थे।

चन्दनवाला ने आनन्द में पुलकित होकर उड्ड के बाकले गहरा दिए। उसी समय आकाश में दुन्दुभि वजने लगी। देवों ने जयनाद किया—सती चन्दनवाला की जय। धनावह के घर फूल और सोनियों की वृष्टि होने लगी। चन्दनवाला की हथकड़ी और नेड़ियाँ आभूषणों के रूप में बदल गई। सारा शरीर दिव्य वस्त्रों से सुशोभित हो गया और मिर पर कोमल सुन्दर और लम्बे केश आ गए। उसी समय वहाँ रत्नजटित दिव्य मिहांसन प्रगट हुआ। इन्द्र आदि देवों ने चन्दनवाला को उम पर बैठाया और स्तुति करने लगे।

भगवान् महावीर के पारणे की रात बिजली के समान सारे नगर में फैल गई। मूला को भी इस बात का पता चला। अपने घर पर सोनियों की वृष्टि हुई जान कर वह भागी हुई आई। घर पहुँचने पर सामने दिव्य वस्त्रालङ्कार पहिन कर सिंहासन पर बैठी हुई चन्दनवाला को देख कर वह आश्चर्यचकित रह गई।

मूला को देखते ही चन्दनवाला उसके सामने गई। विनयपूर्वक प्रणाम करके अपने सुन्दर केशों में उमके पैर पोंछती हुई कहने लगी—माताजी! यह सब आप के चरणों का प्रताप है। लज्जा के कारण मूला का मस्तक नीचे झुक गया। चन्दनवाला उमका हाथ पकड़ कर अन्दर ले गई और अपने साथ मिहांसन पर बिठा लिया।

चन्दनवाला की नेड़ियाँ खुलवाने के लिए सेठ लुहार के पास गया हुआ था। उसने भी सारी बातें सुनीं, प्रसन्न होता हुआ अपने घर आया। मूला को चन्दनवाला के साथ बैठी हुई देख कर सेठ

को क्रोध आ गया। वह मूला को डाटने लगा।

चन्दनमाला सेठजी को देखते ही मिहसून में उतर गई। उन्हें मूला पर क्रुद्ध होते हुए देख कर कहने लगी— पिताजी ! इस में माताजी का कोई दोष नहीं है। प्रत्येक घटना अपने किए हुए कर्मों के अनुसार ही घटती है। हमें इनका उपकार मानना चाहिए, जिसमें भगवान् महावीर का पारणा हमारे घर हो सका। इन्द्र आदि देवों के द्वारा मुझे मालूम पड़ा कि भगवान् के तेरह नातों का अभिग्रह था। वह अभिग्रह माताजी की कृपा से ही पूरा हुआ है। मेठ का क्रोध शान्त करके चन्दनमाला दोनों के साथ मिहसून पर बैठ गई।

धीरे धीरे शहर में यह बात भी फैल गई कि जो लड़की उस दिन बाजार में बिक रही थी, जिसने वेश्या के साथ जाना अस्वीकार किया था और अन्त में धनाग्रह सेठ के हाथ बिकी थी वह चम्पानगरी के राजा दधिवाहन और रानी धारिणी की कन्या है। उसी के हाथ में भगवान् महावीर का पारणा हुआ है।

चन्दनमाला को मेठ के पास छोड़ कर अपने घर लौटने के बाद रथी बहुत ही दुखी रहने लगा। उसे वे तीस लाख मोनैये बहुत जुरे लगते थे। उसकी स्त्री उसे निविध प्रकार में सुग करने का प्रयत्न करती किन्तु वे बातें उसे जले पर नमक के समान मालूम पड़ती। पास पड़ोस के लोग भी चन्दनमाला की सदा प्रशंसा करते। इन सब बातों का रथी की स्त्री पर बहुत प्रभाव पड़ा। वह सोचने लगी कि चन्दनमाला मुझे ही क्यों बुरी लगती है। सारी दुनियाँ तो उसकी प्रशंसा करती है। उसे सभी बातों में अपना ही दोष दिखाई देने लगा। पति पर किया गया आक्षेप भी निराधार मालूम पड़ा। धीरे धीरे उसने वेश्या का सुधरना तथा दूसरी बातें भी सुनीं। उसे विश्वास हो गया कि मारा दोष मेरा ही है। मैंने चन्दनमाला के को नहीं समझा। उसे

होने लगा । चन्दनवाला को वापिस लाने का प्रयत्न व्यर्थ समझ कर उसने निश्चय किया—मैं भी आज से चन्दनवाला के समान ही आचरण करूँगी । उसी के समान घर के मारि काम, नम्र-तापूर्ण व्यवहार तथा ब्रह्मचर्य का पालन करूँगी । भोगविलास, वासनाओं तथा सभी बुरी बातों से दूर रहूँगी । इन बीस लाख मोहरों को अलग ही पड़ी रहने दूँगी । अपने काम में न लाऊँगी ।

रथी की स्त्री का स्वभाव एक दम बदल गया । उसे देख कर रथी और पड़ोसियों को आश्चर्य होने लगा ।

भगवान् महावीर के पारण्य की बात सुन कर रथी की स्त्री ने भी चन्दनवाला के दर्शन करने के लिए अपनी इच्छा प्रकट की । रथी को यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई । दोनों चन्दनवाला के दर्शनों के लिए धनावह मेठ के घर की ओर रवाना हुए ।

वेश्या भी सारा हाल सुन कर चन्दनवाला के पास चली । रथी की स्त्री और वेश्या दोनों चन्दनवाला के पास पहुँच कर अपने अपराधों के लिए पश्चात्ताप करने लगीं । चन्दनवाला ने सारा दीप अपने कर्माँ का बत्ता कर उन्हें शान्त किया । रथी और सेठ भाई भाई के समान एक दूसरे में मिले । रथी की स्त्री और वेश्या ने अपना जीवन सुधारने के लिए चन्दनवाला का बहुत उपकार माना ।

राजा शतानीक की रानी ने भी सारी बातें सुनीं । अपनी बहिन* की पुत्री के साथ होने वाले दुर्व्यवहार के लिए उसने अपने पति की ही दोषी समझा । उसने राजा शतानीक को बुला

* इतिहास से पता चलता है कि अधिवाहन राजा की तीन रानियाँ थीं—अभया, पद्मावती और धारिणी । जिस समय का यह वर्णन है उस समय केवल धारिणी थी । अभया मारी गई थी और पद्मावती दीक्षा ले चुकी थी । मृगावती और पद्मावती दोनों महाराजा चेटक (चेड़ा) की रानियाँ थीं । वे दोनों सगी बहनें थीं और धारिणी पद्मावती की मपत्नी । इसी सम्बन्ध से मृगावती चन्दनवाला की मौसी थी ।

कर रहा— आपके लोभ के कारण कैसा अन्याय हुआ, कितनी निर्दोष तथा पवित्र आत्माओं को भयङ्कर विपत्तियों का सामना करना पड़ा है, यह आप नहीं जानते। मेरे बहुत समझाने पर भी आपने शान्तिपूर्वक राज्य करते हुए मेरे बहनोई राजा दधिवाहन पर चढ़ाई कर दी। फल स्वरूप वे जंगल में चले गए। रानी धारिणी का कोई पता ही नहीं है, उनकी लड़की को आपके किसी रथी ने यहाँ लाकर बाजार में बेचा। उसे कितनी बार अपमानित होना पड़ा, कितने कष्ट उठाने पड़े, यह आपको बिल्कुल मालूम नहीं है। आज उसके हाथ से परम तपस्वी भगवान् महावीर का पारणा हुआ है।

जिस राज्य के लिए आपने ऐसा अत्याचार किया, क्या वह आपके साथ जाएगा ? आपको निरपराध राजा दधिवाहन पर चढ़ाई करने, चम्पा की निर्दोष प्रजा को लूटने और मारकाट मचाने का क्या अधिकार था ? मृगावती परम सती थी। उसका तेज इतना चमक रहा था कि शतानीक उसके विरुद्ध कुछ न बोल सका। अपनी भूल को स्वीकार करते हुए उसने कहा— मैंने राज्य के लोभ से चम्पा की निर्दोष प्रजा पर अत्याचार किया, यह स्वीकार करता हूँ, लेकिन तुम्हारी गहिन की लड़की से मेरी कोई शत्रुता नहीं थी। दधिवाहन की तरह वह मेरी भी पुत्री है। अगर उसके विषय में मुझे कुछ भी मालूम होता तो उसे किसी प्रकार का कष्ट न उठाना पड़ता। खैर, अब उसे यहाँ बुला लेना चाहिए।

शतानीक ने उसी समय सामन्तों को बुलाया और चन्दनवाला को सन्मान पूर्वक लाने की आज्ञा दी। सामन्त गण पालकी लेकर धनावह मेठ के घर पहुँचे और चन्दनवाला को शतानीक का मन्देश सुनाया। चन्दनवाला ने उत्तर दिया— मैं अब महलों में जाना नहीं चाहती इस लिए आप मुझे क्षमा करें। मौसीजी मौसीजी ने मुझे बुला कर जो अपना स्नेह प्रदर्शित किया

के लिए मैं उनकी कृतज्ञ हूँ ।

सामन्तों ने बहुत अनुनय विनय की किन्तु चन्दनवाला ने पाप से परिपूर्ण राजमहलों में जाना स्वीकार न किया । उमने सामन्तों को समझा उझा कर वापिस कर दिया । सामन्तों के खाली हाथ वापिस लौट आने पर राजा और रानी ने चन्दनवाला को लाने के लिए स्त्रय जाने का निश्चय किया ।

राजा और रानी की सवारी बड़े २ सामन्त और उमरावों के साथ धनावह सेठ के घर चली । नगर में बात फैलने से बहुत से नागरिक और सेठ साहूकार भी सवारी के साथ हो लिए । सेठ के घर बहुत बड़ी भीड़ जमा हो गई । पास पहुँचने पर राजा और रानी सवारी से उतर गए ।

चन्दनवाला के पास जाकर राजा ने कहा—पेटी ! मुझ पापी को क्षमा करो मैंने भयङ्कर पाप किए हैं । तुम्हारे संरीखी सती को कष्ट में डाल कर महान् अपराध किया है । तुम देवी हो । प्राणियों को क्षमा करने वाली तथा उनके पाप को धो डालने वाली हो । तुम्हारी कृपा से मुझ पापी का जीवन भी पवित्र हो जायगा इस लिए महल में पधार कर मुझे कृतार्थ करो ।

चन्दनवाला ने दोनों को प्रणाम करके उत्तर दिया—आप मेरे पिता के समान पूज्य हैं । अपराध के कारण मैं आपको अनादरणीय नहीं समझ सकती । आपकी आज्ञा मेरे लिए शिरोधार्य है, किन्तु आप स्वयं जानते हैं कि विचारों पर वातावरण का बहुत प्रभाव पड़ता है । जिन महलों में मदा लूटने समोटेने तथा निरपराधों पर अत्याचार करने का ही विचार होता है उममें जाना मेरे लिए कैसे उचित हो सकता है । जहाँ का वातावरण मेरी भावना और विचारों के सर्वथा प्रतिकूल हो वहाँ मैं कैसे जाऊँ ? आपके भेजे हुए सामन्त भी मेरे लिए आप ही के समान आदरणीय हैं ।

मैं उन्हीं के कहने पर आ जाती किन्तु उम दूषित पातावरण में जाना मैंने ठीक नहीं समझा। चन्दनमाला ने अपना कथन जारी रखते हुए कहा—आप ही बताइए ! मेरे पिता का क्या अपराध था जिसमें आपने चम्पा पर चढ़ाई की ? यदि आप को चम्पा का लोभ था तो आप उम पर कब्जा कर लेते। मेरे पिता तो मर ही उम छोड़ कर चले गए थे। अगर सेना ने आपका नामना किया था तो यह सेना का अपराध था। निर्दोष प्रजा ने आपका क्या मिगाड़ा था जिससे उम पर अमानुषिक अत्याचार किया गया ?

चन्दनमाला की बातों को शतानीक निर नीचा किए चुपचाप सुन रहा था। उमके पाम कोई उत्तर न था।

वह फिर कहने लगी—मैं यह नहीं कहना चाहती कि राजधर्म का त्याग किया जाय, किन्तु राजधर्म प्रजा की रक्षा करना है। उमका विनाश नहीं। क्या चम्पा को लूट कर आपने राजधर्म का पालन किया है ? क्या आप को मालूम है कि आपकी सेना ने चम्पा के निवासियों पर कैसा अत्याचार किया है ? वहाँ के निर्दोष नागरिकों के साथ कैसा पैशाचिक व्यवहार किया है ? क्या आप नहीं जानते कि अन्धे सैनिकों को गुली छुड़ी दे देने पर क्या होता है ? सम्य नागरिकों को लूटना, समोटना, मारना, काटना और उनकी नहू पेटियों का अपमान करना ऐसा कोई भी अत्याचार नहीं है जिससे वे हिरुचते हों।

जब आपका एक रथी मुझे ओर मेरी माता को भी दुर्भाग्यना से पकड़ कर जंगल में ले गया तो न मालूम प्रजा की नहू पेटियों के साथ कैसा व्यवहार हुआ होगा ? मेरी माता वीराङ्गना थी, इस लिए सतीत्व की रक्षा के लिए उसने अपने प्राण त्याग दिए और उस रथी को सदा के लिए धार्मिक तथा सदाचारी बना दिया। जिस माता में इतने बलिदान की शक्ति न हो क्या उस पर

चार होने देना ही राजधर्म है ?

चन्दनपाला के मुख में धारिणी की मृत्यु का समाचार सुन कर मृगावती को बहुत दुःख हुआ। वह शोक करने लगी कि मैं पति के अत्याचार से पीड़ित हो कर कितनी माताओं को अपने मतीत्व की रक्षा के लिए प्राण त्यागने पड़े होंगे। कितनी ही अपने मतीत्व को खो बैठी होंगी। धिक्कार है ऐसी राज्यालिप्सा को। चन्दनवाला ने मृगावती को मान्द्वना देते हुए कहा—मेरी माता ने पवित्र उद्देश्य में प्राण दिए हैं। इस प्रकार प्राण देने वाले बिगले ही होते हैं। उनके लिए शोक करने की आवश्यकता नहीं है। मैं तो यह कह रही हूँ—जिम राजमहल में चलने के लिए मुझे कहा जा रहा है उसमें किए गए विचारों का परिणाम कैसा भयङ्कर है।

वह फिर कहने लगी—राजा का कर्तव्य है कि वह अपने नगर तथा देश में होने वाली घटनाओं से परिचित रहे। क्या आपको मालूम है कि आप कौन नगर में कौन दुखी हैं ? किम पर कैसा अत्याचार हो रहा है ? कैसा अनीतिपूर्ण व्यवहार खुल्लम-खुल्ला हो रहा है ? आप ही की राजधानी में दास दामियों का क्रयविक्रय होता है। क्या आपने कभी इस नीच व्यापार पर ध्यान दिया है ? मैं स्वयं इसी नगर के चौराहे पर बिकी हूँ। मुझे एक वेश्या खरीद रही थी। मेरे इन्कार करने पर उमने बलपूर्वक ले जाना चाहा। बहुत मे नागरिक भी उसकी सहायता के लिए तैयार हो गए। अकस्मात् बन्दरों के बीच में आ जाने से वेश्या का उद्देश्य पूरा न हुआ। नहीं तो अपने शील की रक्षा के लिए मुझे कौनसा उपाय अङ्गीकार करना पड़ता, यह कुछ नहीं कहा जा सकता।

भाग्य से रथी को बीस लाख मोनैये दे कर मेठजी मुझे अपने घर ले आए। इन्होंने मुझे अपनी पुत्री के समान रखवा और आज भगवान् महावीर का पारणा हुआ।

आप को इन सब बातों का कुछ भी पता नहीं। महल में बैठ कर आप प्रजा पर अत्याचार करने, उसकी गाड़ी रुमाई को लूट कर अपने भोगविलास में लगाने तथा निर्दोष जनता को सतान का विचार करते हैं, प्रजा के दुःख को दूर करने का नहीं। क्या यही राजधर्म है? क्या यही आपका कर्तव्य है? क्या कभी आप ने सोचा है कि पाप का फल हर एक को भोगना पड़ता है?

जिस महल में रहते हुए आपके विचार ऐसे गन्दे हो गए उसमें जाना मुझे उचित प्रतीत नहीं होता। इस लिए क्षमा कीजिए। यहाँ पर रह कर मुझे भगवान् महानीर के पारण का लाभ प्राप्त हुआ। महलों में यह कभी नहीं हो सकता था।

रानी मृगावती शतानीर को समय २ पर हिमाप्रधान कार्यों से बचने तथा प्रजा का पुत्र के समान पालन करने के लिए समझाया करती थी किन्तु उस समय वह न्याय और धर्म का उपहास किया करता था। चन्दनमाला के उपदेश का उस पर गहरा असर पड़ा। उत्तर में वह कहने लगा— हे मती! आपका कहना यथार्थ है। मैंने महान् पाप किए हैं। जनहत्या, मित्रद्रोह आदि उड़े मे बड़ा पाप करने में भी मैंने सङ्कोच नहीं किया। मैं राजाओं का जन्म युद्ध, दमन, शासन और भोगविलास के लिए मानता था। मेरी ही अव्यवस्था के कारण आपकी माता को प्राण त्यागने पड़े और आपको महान् कष्ट उठाने पड़े। मैं इस बात से सर्वथा अनभिज्ञ था कि मेरी आज्ञा का इस प्रकार दुरुपयोग होगा। मैंने चम्पा को लूटने की आज्ञा दी थी किन्तु स्त्रियों के लूटे जाने, उनका सतीत्व नष्ट होने आदि का मुझे बिल्कुल खयाल न था। मेरी आज्ञा की ओट में इस भयङ्कर अत्याचार के होने की बात मुझे आज ही मालूम पड़ी है। इसके लिए मैं ही अपराधी हूँ।

अगर मेरी नगरी में दास दामी के क्रय विक्रय की प्रथा न हो

तो आपको क्यों मरना पड़ता? अगर राजा दधिवाहन के जाते ही मैंने उनके परिवार का खयाल किया होता तो आपको इतना रुष्ट क्यों उठाना पड़ता तथा आपकी माता को प्राण क्यों त्यागने पड़ते? इन सब कार्यों के लिए दोष मेरा ही है। मुझे अपने किए पर पश्चात्ताप हो रहा है। उन पापों के लिए मैं लज्जित हूँ। यह कहते हुए शतानीक की आँखें डबडबा आईं। उसके हृदय में महान् दुःख ही रहा था।

चन्दनवाला ने शतानीक को मान्त्वना देते हुए कहा—पिताजी! पश्चात्ताप करने से पाप कम हो जाता है। आपकी आज्ञा में जिन व्यक्तियों का स्वत्व लूटा गया है, उनका स्वत्व वापस लौटा दीजिए। भविष्य में ऐसा पाप न करने की प्रतिज्ञा कर लीजिए, फिर आप पवित्र हो जाएंगे। आज से यह समझिए कि राज्य आपके भोग-विलास के लिए नहीं है किन्तु आप राज्य तथा प्रजा की रक्षा करने के लिए है। अपने को शामन करने वाला न मान कर प्रजा की रक्षा तथा उसकी सुखवृद्धि के लिए राज्य का भार उठाने वाला मेवक मानिए फिर राज्य आपके लिए पाप का कारण न होगा। अपनी शक्ति का उपयोग दूसरों पर अन्याचार करने के लिए नहीं, किन्तु दीन दुखी जनों की रक्षा के लिए कीजिए। शतानीक ने चन्दनवाला की सारी बातें गिर झुका कर मान लीं।

इसके साथ साथ आप पुराने सब अपराधियों को क्षमा कर दीजिए। चाहे वह प्रगल्भ उन्होंने आपकी आज्ञा से किया हो या बिना आज्ञा के, किसी को दण्ड मत दीजिए। चन्दनवाला ने सब को अभय दान देने का उद्देश्य में रखा।

शतानीक ने उत्तर दिया—पैटी! मैं सभी को क्षमा करता हूँ किन्तु जिन अपराधियों ने कुलाङ्गनाओं का मर्तृत्व लूटा है, जिसके कारण आपकी माता को प्राण त्याग और आपको महान् रुष्ट

सहन करने पड़े हैं, उन्हें क्षमा नहीं किया जा सकता। उनका अपराध अक्षम्य है।

चन्दनवाला ने कहा—जिम प्रकार आपका अपराध केवल पश्चात्ताप में शान्त हो गया इसी प्रकार दूसरे अपराधी भी पश्चात्ताप के द्वारा छुटकारा पा सकते हैं। अगर उनके अपराध को अक्षम्य समझ कर आप दण्ड देना आवश्यक समझते हैं तो आपका अपराध भी अक्षम्य है। दण्ड देने से वैर की वृद्धि होती है। इस प्रकार वैरा हुआ वैर जन्म जन्मान्तर तक चला करता है, इस लिए अब तक के सब अपराधियों को क्षमा कर दीजिए।

शतानीक साहम उसके बोला—आप का कहना बिल्कुल ठीक है। मुझे भी दण्ड भोगना चाहिए। आप मेरे लिए कोई दण्ड निश्चित कर सकती हैं।

शतानीक को अपने अपराध के लिए दण्ड मागते देख कर रथी का साहस बढ़ गया। वह सामने आकर कहने लगा—महाराज ! धारिणी की मृत्यु और इस सती के कष्टों का कारण मैं ही हूँ। आप मुझे कठोर से कठोर दण्ड दीजिए जिसमें मेरी आत्मा पवित्र बने।

रथी के इस कथन को सुन कर सभी लोग दग रह गए, क्योंकि इस अपराध का दण्ड बहुत भयङ्कर था।

चन्दनवाला रथी के माहम को देख कर प्रसन्न होती हुई शतानीक से कहने लगी—पिताजी ! अपराधी को दण्ड देने का उद्देश्य अपराध का बदला लेना नहीं होता किन्तु अपराधी के हृदय में उस अपराध के प्रति घृणा उत्पन्न करना होता है। बदला लेने की भावना से दण्ड देने वाला स्वयं अपराधी बन जाता है। अगर अपराधी के हृदय में अपराध के प्रति स्वयं घृणा उत्पन्न हो गई हो, वह उसके लिए पश्चात्ताप कर रहा हो और भविष्य में ऐसा न करने का निश्चय कर चुका हो तो फिर उसे दण्ड देने की आवश्यकता-

नहीं रहती, इस लिए न आपको दण्ड लेने की आवश्यकता है न रथी पिता को। चन्दनवाला ने रथी के सुधरने का सारा वृत्तान्त सुनाया और राजा से कहा—मैं इनकी पुत्री हूँ। मेरे लिए ये, आप और सेठजी तीनों समान रूप से आदरणीय हैं। ये आपके भाई हैं।

शतानीक रथी के साहस पर आश्चर्य कर रहा था। चन्दनवाला के उपदेश ने उसमें क्रान्ति उत्पन्न कर दी। वह रथी के पास गया और उसे छाती से लगा कर कहने लगा—आज से तुम मेरे भाई हो मैं तुम्हारे समस्त अपराध क्षमा करता हूँ।

राजा और एक अपराधी के इस भाई चारे को देख कर सारी जनता आनन्द से गद्गद हो उठी।

शतानीक ने चन्दनवाला से फिर प्रार्थना की—बेटी! महल तो निर्जीव हैं, इस लिए उनमें किसी प्रकार का दोष नहीं हो सकता। दोष तो भुक्त में था, उसी के कारण सारा वातावरण दूषित बना हुआ था। जब आपने मुझे पवित्र कर दिया तो महल अपने आप पवित्र होगए, इस लिए अब आप वहाँ पधारिए। आपके पधारने से वातावरण और पवित्र हो जाएगा।

चन्दनवाला ने सेठ से अनुमति लेकर जाना स्वीकार कर लिया। सेठ के आग्रह से राजा, रानी, रथी, और रथी की स्त्री ने उसके घर भोजन किया। चन्दनवाला ने तेल का पारणा किया।

राजा, रानी, सेठ, सेठानी, रथी और रथी की स्त्री के साथ चन्दनवाला महल को खाना हुई। नगर की सारी जनता सती का दर्शन करने के लिए उमड़ पड़ी। चन्दनवाला योग्य स्थान पर खड़ी रह कर जनता को उपदेश देती हुई राजद्वार पर आ पहुँची। चन्दनवाला के पहुँचते ही महलों में धार्मिक वातावरण छा गया। जहाँ पहले लूटमार और व्यभिचार की बातें होती थीं, वहाँ अब धर्मचर्चा होने लगी।

शतानीक अग दधिवाहन को अपना मित्र मानने लगा था । उसके प्रति किए गए अपराध से मुक्त होने के लिए चम्पा का राज्य उसे वापिस सौंपना चाहता था । उसने दधिवाहन को खोज कर मन्मानपूर्वक लाने के लिए आदमी भेजे ।

शतानीक के आदमी खोजते हुए दधिवाहन के पास पहुँचे । उसे नम्रतापूर्वक सारा वृत्तान्त सुनाया । फिर शतानीक की ओर मे चलने के लिए प्रार्थना की । धारिणी की मृत्यु सुन कर दधिवाहन को बहुत दुःख हुआ, साथ ही चन्दनवाला के आदर्श कार्यों से प्रसन्नता । वह मन में रह कर त्यागपूर्ण अपना जीवन बिताना चाहता था । राज्य के भार को दुबारा अपने ऊपर न लेना चाहता था । फिर भी शतानीक के सामन्तों का बहुत आग्रह होने के कारण शतानीक द्वारा भेजे हुए वाहन पर बैठ कर वह कौशाम्बी की ओर चला ।

राजा दधिवाहन का स्वागत करने के लिए कौशाम्बी को त्रिविध प्रकार से सजाया गया । उनके आने का समाचार सुन कर हर्षित होता हुआ शतानीक अपने सामन्त सरदारों के साथ अगवानी करने के लिए सामने गया । समीप आने पर दोनों अपनी अपनी सजारी से उतर गए । शतानीक दधिवाहन के पैरों में गिर कर अपने अपराधों के लिए मार २ क्षमा मागने लगा । दधिवाहन ने उसे उठा कर गले से लगाया और सारी घटनाओं को क्रमों की विडम्बना बता कर उसे शान्त किया । दोनों शत्रुओं में चिर काल के लिए प्रेम सम्बन्ध स्थापित हो गया । इसमें शतानीक या दधिवाहन की विजय न थी किन्तु शत्रुता पर मित्रता की और पाप पर धर्म की विजय थी ।

सती चन्दनवाला के पिता राजा दधिवाहन के आगमन की बात भी छिपी न रही । उनका दर्शन करने के लिए आई हुई जनता मे सारा मार्ग भर गया । दधिवाहन और शतानीक

एक माथ आते देख कर जनता जयनाद करने लगी ।

महल में पहुँच कर शतानीक ने दधिवाहन को ऊँचे मिहासन पर बैठाया । प्रसन्न होती हुई चन्दनवाला पिता से मिलने आई । पास आकर उमने विनय पूर्वक प्रणाम किया । चन्दनवाला को देखकर दधिवाहन गद्गद् हो उठा । फंठ रुँध जानें से वह एक भी शब्द न बोल सका । माथ में उमे लज्जा भी हुई की जिम वसुमती को वह असहाय अवस्था में छोड़ कर चला गया था उसने अपने चरित्र बल से सब को सुधार दिया । धारिणी के प्राण त्याग और चन्दनवाला की दृढ़ता के सामने वह अपने को तुच्छ मानने लगा ।

शतानीक को राज्य में घृणा हो गई थी, इस लिए उसने दधिवाहन से कहा—'मैंने अब तक अन्यायपूर्ण राज्य किया है । न्याय से राज्य कैसे किया जाता है, यह मैं नहीं जानता, इस लिए आप चम्पा और कौशाम्बी दोनों राज्यों को सम्भालिए । मैं आपके नीचे रह कर प्रजा की सेवा करना सीखूँगा ।

दधिवाहन ने उत्तर दिया—न्यायपूर्ण शासन करने के लिए हृदय पवित्र होना चाहिए । भावना के पवित्र होने पर ढंग अपने आप आ जाता है । मैं वृद्ध हो गया हूँ इस लिए दोनों राज्य आप ही सम्भालिए ।

जिस राज्य के लिए घोर अत्याचार तथा महान् नरसंहार हुआ वही एक दूमरे पर इस प्रकार फँका जा रहा था, जैसे दो खिलाडी परस्पर कन्दुक (गेंद) को फँकते हैं । चन्दनवाला यह देख कर हर्षित हो रही थी कि धर्म की भावना किस प्रकार मनुष्य को राजस से देवता बना देती है ।

अन्त में चन्दनवाला के कहने पर यह निर्णय हुआ कि दोनों को अपना २ राज्य स्वयं सम्भालना चाहिए । दोनों राज्यों का भार किसी एक पर न पड़ना चाहिए ।

बड़े समारोह के साथ दधिवाहन का राज्याभिषेक हुआ। दधिवाहन को दुवारा प्राप्त कर चम्पा की प्रजा को इतना हर्ष हुआ जितना विछुड़े हुए पिता को पाकर पुत्र को होता है। कौशाम्बी और चम्पा दोनों राज्यों का स्थायी सम्मन्त्र हो गया। किम्बो के हृदय में वैर और शत्रुता की भावना नहीं रही। सब जगह अस्सण्ड प्रेम और शान्ति स्थापित हो गई। मती चन्दनमाला ने चम्पा के उद्धार के साथ साथ सारे समार के सामने प्रेम और मतीत्व का महान् आदर्श स्थापित कर दिया।

शतानीक और दधिवाहन में इतना प्रेम हो गया था कि उन दोनों में से कोई एक दूसरे से अलग होना नहीं चाहता था। चम्पा का अधिपति होने पर भी दधिवाहन प्रायः कौशाम्बी में ही रहने लगा। कुछ दिनों बाद उसे चन्दनमाला के विवाह की चिन्ता हुई। शतानीक और मृगावती ने भी चन्दनमाला का विवाहोत्सव देखने की इच्छा प्रकट की, फिर भी उससे बिना पूछे वे कुछ निश्चय नहीं कर सकते थे। एक दिन मृगावती ने दधिवाहन और शतानीक की उपस्थिति में चन्दनमाला के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा। चन्दनमाला आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए पहले ही निश्चय कर चुकी थी। उसके मन में और भी उच्च भावसाएँ थीं। इस लिए उसने मृगावती के प्रस्ताव का नम्रतापूर्वक ऐमा विरोध किया जिससे उन तीनों में से कोई कुछ न बोल सका। सब सुख साधनों के होते हुए यौवन के प्रारम्भ में ब्रह्मचर्य पालन की कठोर प्रतिज्ञा का उन तीनों पर ऐमा असर पड़ा कि उन्होंने भी यावज्जीवन ब्रह्मचर्य मत धारण कर लिया।

राज्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए चम्पा में रहना आवश्यक समझ कर कुछ दिनों बाद दधिवाहन चम्पा चला गया। चन्दनमाला को

केवलज्ञान होने पर वह उनके पाम दीक्षा लेना चाहती थी।

कुछ दिनों बाद वह अवसर उपस्थित हो गया जिसके लिए चन्दनवाला प्रतीक्षा कर रही थी। श्रमण भगवान् महावीर को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। संसार का कल्याण करने के लिए वे ग्रामानुग्राम विचरने लगे। चन्दनवाला को भी यह समाचार मिला। उसे इतना आनन्द हुआ जितना प्यासे चातक को वर्षा के आगमन पर होता है। शतानीक और मृगावती में आज्ञा लेकर वह भगवान् के पास दीक्षा लेने के लिए चली। कौशाम्बी की जनता ने आँखों में आँसू भर कर उसे विदा दी। चन्दनवाला ने सभी को भगवान् के बताए हुए मार्ग पर चलने का उपदेश दिया। कौशाम्बी से खाना होकर वह भगवान् के समवसरण में पहुँच गई। देशना के अन्त में उमने अपनी इच्छा प्रकट की। सासारिक दुःखों में छुटकारा देने के लिए भगवान् से प्रार्थना की।

भगवान् ने चन्दनमाला को दीक्षा दी। स्त्रियों में सर्व प्रथम दीक्षा लेने वाली चन्दनमाला थी। उमी से साध्वी रूप तीर्थ का प्रारम्भ हुआ था, इस लिए भगवान् ने उसे माध्वी सघ की नेत्री बनाया।

यथासमय मृगावती ने भी दीक्षा ले ली । वह चन्दनमाला की शिष्या बनी । धीरे धीरे काली, महाकाली, सुकाली आदि रानियों ने भी चन्दनमाला के पाम समयम अङ्गीकार कर लिया । छत्तीस हजार साधवियों के मध की मुखिया बन कर वह लोक कन्याएँ के लिए ग्रामानुग्राम विचरने लगी । उसके उपदेश से अनेक भव्य प्राणियों ने प्रतिबोध प्राप्त किया तथा श्रावक या साधु के व्रतों को अङ्गीकार कर जन्म मफल किया । बहुत लोग मिथ्यात्व को छोड़ कर मत्त धर्म पर श्रद्धा करने लगे ।

एक बार श्रमण भगवान् महावीर विचरते हुए कौशाम्बी पधारे ।

। ए। ५। भी अपनी शिष्याओं के साथ वहीं आगमन हुआ ।

एक दिन मृगावती अपनी गुरुआनीसनी चन्दनवाला की आज्ञा लेकर भगवान् के दर्शनार्थ गई। सूर्य चन्द्र भी अपने मूल विमान से दर्शनार्थ आये थे। अतः प्रकाश के कारण समय का ज्ञान न रहा। सूर्य चन्द्र चले गये। इनने

त हो गई। मृगावती अंधेरा होजाने पर उपाश्रय में पहुँची। हाँ आकर उसने चन्दनवाला को वन्दना की। प्रवर्तिनी होने के कारण उसे उपालम्भ देते हुए चन्दनवाला ने कहा— साधियों को सूर्यास्त के बाद उपाश्रय के बाहर न रहना चाहिए।

मृगावती अपना दोष स्वीकार करके उसके लिए पश्चात्ताप करने लगी। समय होने पर चन्दनवाला तथा दूसरी साधियाँ अपने अपने स्थान पर सो गई, किन्तु मृगावती बैठी हुई पश्चात्ताप करती रही। धीरे धीरे उसके घाती कर्म नष्ट हो गए। उसे केवलज्ञान होगया।

अंधेरी रात थी। सब सतियाँ सोई हुई थीं। उसी समय मृगावती ने अपने ज्ञान द्वारा एक काला साप देखा। चन्दनवाला का हाथ साप के मार्ग में था। मृगावती ने उसे अलग कर दिया। हाथ के छूए जाने से चन्दनवाला की नींद खुल गई। पूछने पर मृगावती ने साप की बात कह दी और निद्रा भग करने के लिए क्षमा मागी।

चन्दनवाला ने पूछा—अंधेर में आपने साँप को कैसे देखा लिया? मृगावती ने उत्तर दिया— आपकी कृपा से मेरे दोष नष्ट हो गए हैं, इस लिए ज्ञान की ज्योति प्रकट हुई है।

चन्दनवाला— पूर्ण या अपूर्ण ?

मृगावती—आपकी कृपा होने पर अपूर्णता कैसे रह सकती है ?

चन्दनवाला—तब तो आपको केवलज्ञान प्राप्त हो गया है। बिना जाने मुझसे आपकी आशातना हुई है। मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

चन्दनवाला ने मृगावती को वन्दना की। केवली की आशातना के लिए वह पश्चात्ताप करने लगी। उसी समय उसके घाती कर्म नष्ट हो गए। और केवलदर्शन

कर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बन गई ।

केवलज्ञानी होने के बाद मती चन्दननाला और मती मृगावती विचर विचर कर जनता का कल्याण करने लगीं । मती चन्दननाला की छत्तीस हजार साधियों में से एक हजार चार सौ साधियों को केवलज्ञान प्राप्त हुआ ।

आयुष्य पूरी होने पर एक हजार चार सौ साधियाँ शेष कर्मों को खपा कर शुद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गई ।

चन्दननाला को धारिणी का उपदेश ।

शान्ति-समर में कभी भूल कर धैर्य नहीं खोना होगा ।
 वज्र प्रहार भले हो मिर पर फिन्तु नहीं गीना होगा ॥
 अरि से जगला लेने का मन धीज नहीं घोना होगा ।
 घर में कान तूल देकर फिर तुझे नहीं सोना होगा ॥
 देश दाग को रुधिर-आरि से दूषित हो घोना होगा ।
 देश-कार्य की भागी गठड़ी मिर पर रख डोना होगा ॥
 आँखें लाल, भवें टेढ़ी रू कोध नहीं करना होगा ।
 बलि बेनी पर तुझे हर्ष में चढ़ कर रूट मरना होगा ॥
 नश्वर है नर-देह, मौत में कभी नहीं डरना होगा ।
 मृत्यु-मार्ग को छोड़ स्वार्थ पथ पर पैर नहीं धरना होगा ॥
 होगी निश्चय जीत धर्म की, यही भाव भरना होगा ।
 मातृ भूमि के लिये, हर्ष में जीना या मरना होगा ॥

(पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के व्याख्यानो में आए हुए सती चन्दननाला चरित्र के आधार पर) -
 (हरि आर्ति गा ५००-२१) (त्रि श पु पृ १०)

राजीमती

रघुवंश तथा यदुवंश भारतवर्ष की प्राचीन मस्कृति और सभ्यता के उत्पत्ति क्षेत्र थे । उन्हीं का वर्णन करके मस्कृत कवियों ने अपनी लेखनी को अमर बनाया । उन्हीं दो गिरिशृङ्गों से भारतीय साहित्य गंगा के दिव्य स्रोत बहे ।

जिस प्रकार रघुवंश के साथ अयोध्या नगरी का अमर मगध है उसी प्रकार यदुवंश के साथ द्वारिका नगरी का । रघुवंश में राम मरीखे महापुरुष और सीता सरीखी महासतियाँ हुई और यदुवंश का मस्तक भगवान् अरिष्टनेमि तथा महामती राजीमती मरीखी महान् आत्माओं के कारण गौरवीभूत है ।

उसी यदुवंश में अन्धकवृष्णि और भोजवृष्णि नाम के दो प्रतापी राजा हुए । अन्धकवृष्णि गौरिपुर में राज्य करते थे और भोजवृष्णि मथुरा में । महाराज अन्धकवृष्णि के समुद्रविजय, वसुदेव आदि दस पुत्र थे जिन्हें दशार्ह कहा जाता था । उनमें से नडे महाराज समुद्रविजय के पुत्र भगवान् अरिष्टनेमि (अपर नाम नेमिकुमार) हुए । इनकी माता का नाम शिवादेवी था । महाराज वसुदेव के पुत्र कृष्णवासुदेव हुए । इनकी माता का नाम देवकी था । भोजवृष्णि के एक भाई मृत्तिकावती नगरी में राज्य करते थे । उनके पुत्र का नाम देवक था । देवकी इनकी पुत्री थी । भोजवृष्णि के पुत्र महाराज उग्रसेन हुए । उग्रसेन की रानी वारिणी के गर्भ से राजीमती का जन्म हुआ था । राजीमती रूप, गुण और शील सभी में अद्वितीय थी ।

वीरे धीरे वह विवाह योग्य हुई । माता पिता को योग्य वर की चिन्ता हुई । वे चाहते थे, राजीमती जैसी सुशील तथा सुन्दर, है उसके लिए ऐसा ही वर खोजना चाहिए । इसके लिए उन्हें

नेमिकुमार के विवाय कोई व्यक्ति उपयुक्त नहीं जान पड़ता था किन्तु नेमिकुमार विवाह ही न करना चाहते थे। बचपन में ही उनका मन संसार से विरक्त था। यादवों के भोगविलास उन्हें अच्छे न लगते थे। हिंसा पूर्ण कार्यों से स्वाभाविक अरुचि थी। इस कारण महारान उग्रसेन को चिन्ता हो रही थी कि कहीं राजीमती का विवाह उसके अननुरूप वर से न करना पड़े।

महाराज समुद्रविजय और महारानी शिवा देवी भी नेमिकुमार का विवाहोत्सव देखने के लिए उत्कण्ठित थे किन्तु नेमिकुमार की स्वीकृति के बिना कुछ न कर सकते थे। एक दिन उन्होंने नेमिकुमार से कहा— उत्तम ! हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि आप तीर्थङ्कर होने वाले हैं। तीर्थङ्करों का जन्म जगत्कल्याण के लिये ही होता है। यह हर्ष की बात है कि आप के द्वारा मोह में फँसे हुए भव्य प्राणियों का उद्धार होगा। किन्तु आपमें पहले भी बहुत से तीर्थङ्कर हो चुके हैं, उन्होंने विवाह किया था, राज्य किया था और फिर संसार त्याग कर मोक्ष मार्ग को अपनाया था। हम यह नहीं चाहते कि आप मारी उग्र गृहस्थ जीवन में फँसे रहें। हमारे चाहने से ऐसा हो भी नहीं सकता क्योंकि आप तीर्थङ्कर हैं। भव्य प्राणियों का उपकार करने के लिए उनके शुभ कर्मों से प्रेरित होकर आप अग्रज्यसमार का त्याग करेंगे किन्तु यह कार्य आप विवाह के बाद भी कर सकते हैं। हमारी अन्तिम अभिलाषा है कि हमें आपका विवाहोत्सव देखने का अवसर प्राप्त हो। क्या माता पिता के इस सुख स्वप्न को आप पूरा न करेंगे ?

कुमार नेमिनाथ अपनी स्वाभाविक मुस्कान के साथ सिर नीचा किए माता पिता की बातें सुनते रहे। वे मन में सोच रहे थे कि समार में कितना अज्ञान फैला हुआ है। भोले प्राणी अपनी मन्तान को विवाह बन्धन में डालने के लिए कितने उत्सुक रहते

हैं? उसे ब्रह्मचर्य के उच्च आदर्श से गिराने में कितना सुख मानते हैं? इनकी दृष्टि में ब्रह्मचर्य जीवन जीवन ही नहीं है। संसार में समझदार और बुद्धिमान कहे जाने वाले मनुष्य भी ऐसे विचारों से घिरे हुए हैं। मेरे लिए इस विचारधारा में बह जाना श्रेयस्कर नहीं है। मैं दुनियाँ के मामने त्याग और ब्रह्मचर्य का उच्च आदर्श रखना चाहता हूँ किन्तु इस समय माता पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना या मान लेना दोनों मार्ग ठीक नहीं हैं। यह मोच कर उन्होंने रात को टालने के अभिप्राय से कहा— आप लोग धैर्य रखें। अभी विवाह का अवसर नहीं है। अवसर आने पर देखा जाएगा। समुद्रविजय और शिवादेवी इसके आगे कुछ न बोल सके। वे उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे जिस दिन कुमार नेमिनाथ दूल्हा बनेंगे। मिर पर मौँर बाँध कर विवाह करने जाएंगे।

समुद्रविजय और शिवादेवी कुमार नेमिनाथ से विवाह की स्वीकृति लेने का प्रयत्न कई बार कर चुके थे किन्तु कुमार सदा टालमटोल कर दिया करते थे। अन्त में उन्होंने श्रीकृष्ण से सहायता लेने की बात सोची। एक दिन उन्हें बुला कर कहा— बत्स ! तुम्हारे छोटे भाई अरिष्टनेमि पूर्ण युवक हो गए हैं। वे अभी तक अविवाहित ही हैं। हमने उन्हें कई बार समझाया किन्तु वे नहीं मानते। तीन खण्ड के अधिपति वासुदेव का भाई अविवाहित रहे यह शोभा नहीं देता। इस विषय में आप भी कुछ प्रयत्न कीजिए।

श्रीकृष्ण ने प्रयत्न करने का वचन देकर समुद्रविजय और शिवादेवी को सान्त्वना दी। इसके बाद वे अपने महल में आकर कोई उपाय सोचने लगे। उन्हें विचार में पड़ा देख कर सत्यभामा ने चिन्ता का कारण पूछा। विवाह सम्बन्धी बातों में स्त्रियाँ विशेष चतुर होती हैं, यह सोच कर श्रीकृष्ण ने मारी बात कह दी।

उन दिनों

१। शुद्ध नए फूल और पत्तों से

नेमिकुमार के मित्राय कोई व्यक्ति उपयुक्त नहीं जान पड़ता था किन्तु नेमिकुमार विवाह ही न करना चाहते थे। वचन से ही उन का मन ससार में विरक्त था। यादवों के भोगविलास उन्हें अच्छे न लगते थे। हिंसा पूर्ण कार्यों से स्वाभाविक अरुचि थी। इस कारण महाराज उग्रमेन को चिन्ता हो रही थी कि कहीं राजीमती का विवाह उसके अननुरूप वर से न करना पड़े।

महाराज समुद्रपिजय और महारानी शिवा देवी भी नेमिकुमार का विवाहोत्सव देखने के लिए उत्कण्ठित थे किन्तु नेमिकुमार की स्वीकृति के बिना कुछ न कर सकते थे। एक दिन उन्होंने नेमिकुमार से कहा— ब्रह्म ! हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि आप तीर्थङ्कर होने वाले हैं। तीर्थङ्करों का जन्म जगत्कल्याण के लिये ही होता है। यह हर्ष की बात है कि आप के द्वारा मोह में फँसे हुए भव्य प्राणियों का उद्धार होगा। किन्तु आपमें पहले भी बहुत से तीर्थङ्कर हो चुके हैं, उन्होंने विवाह किया था, राज्य किया था और फिर ससार त्याग कर मोक्ष मार्ग को अपनाया था। हम यह नहीं चाहते कि आप मारी उग्र गृहस्थ जीवन में फँसे रहें। हमारे चाहने से ऐसा हो भी नहीं सकता क्योंकि आप तीर्थङ्कर हैं। भव्य प्राणियों का उपकार करने के लिए उनके शुभ कर्मों से प्रेरित होकर आप अग्रज समार का त्याग करेंगे किन्तु यह कार्य आप विवाह के बाद भी कर सकते हैं। हमारी अन्तिम अभिलाषा है कि हमें आपका विवाहोत्सव देखने का अवसर प्राप्त हो। क्या माता पिता के इस सुख स्वप्न को आप पूरा न करेंगे ?

कुमार नेमिनाथ अपनी स्वाभाविक मुस्कान के साथ सिर नीचा किए माता पिता की बातें सुनते रहे। वे मन में मोच रहे थे कि समार में कितना अज्ञान फैला हुआ है। भोले प्राणी अपनी मन्तान को विवाह बन्धन में डालने के लिए कितने उत्सुक रहते

हैं? उसे ब्रह्मचर्य के उच्च आदर्श से गिराने में कितना सुख मानते हैं? इनकी दृष्टि में ब्रह्मचर्य जीवन जीवन ही नहीं है। संसार में समझदार और बुद्धिमान् कहे जाने वाले मनुष्य भी ऐसे विचारों से घिरे हुए हैं। मेरे लिए इस विचारधारा में बह जाना श्रेयस्कर नहीं है। मैं दुनियाँ के सामने त्याग और ब्रह्मचर्य का उच्च आदर्श रखना चाहता हूँ किन्तु इस समय माता पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना या मान लेना दोनों मार्ग ठीक नहीं हैं। यह मोच कर उन्होंने बात को टालने के अभिप्राय से कहा— आप लोग धैर्य रखें। अभी विवाह का अवसर नहीं है। अवसर आने पर देखा जाएगा। समुद्रविजय और शिवादेवी इसके आगे कुछ न बोल सके। वे उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे जिस दिन कुमार नेमिनाथ दूल्हा बनेंगे। सिर पर मौँ र बाँध कर विवाह करने जाएंगे।

समुद्रविजय और शिवादेवी कुमार नेमिनाथ से विवाह की स्वीकृति लेने का प्रयत्न कई बार कर चुके थे किन्तु कुमार सदा टालमटोल कर दिया करते थे। अन्त में उन्होंने श्रीकृष्ण से सहायता लेने की बात सोची। एक दिन उन्हें बुला कर कहा— वत्स! तुम्हारे छोटे भाई अरिष्टनेमि पूर्ण युवक हो गए हैं। वे अभी तक अविवाहित ही हैं। हमने उन्हें कई बार समझाया किन्तु वे नहीं मानते। तीन खण्ड के अधिपति वासुदेव का भाई अविवाहित रह यह शोभा नहीं देता। इस विषय में आप भी कुछ प्रयत्न कीजिए।

श्रीकृष्ण ने प्रयत्न करने का वचन देकर समुद्रविजय और शिवादेवी को सान्त्वना दी। इसके बाद वे अपने महल में आकर कोई उपाय सोचने लगे। उन्हें विचार में पड़ा देख कर सत्यभामा न चिन्ता का कारण पूछा। विवाह सम्बन्धी बातों में स्त्रियाँ विशेष चतुर होती हैं, यह सोच कर श्रीकृष्ण ने मारी बात कह दी।
उन दिनों वसन्त ऋतु थी। वृक्ष नए फूल और पत्तों से

थे । सुगन्धित समीर युग्म हृदयों में मादकता का मञ्चार कर रहा था । मत्स्यभामा ने वसन्तोत्सव मनाकर उमी में श्रीनेमिकुमार से विवाह की स्वीकृति लेने का निश्चय किया ।

रैवत गिरि अपनी प्राकृतिक सुपमा के लिए अनुपम है । उमी पर वसन्तोत्सव मनाने का निश्चय किया गया । भूमधाम से तैयारियाँ शुरू हुईं । श्रीकृष्ण, यलदेव आदि सभी यादव अपनी पत्नियों के साथ रैवत गिरि पर चले । नेमिकुमार को भी श्रीकृष्ण ने आग्रहपूर्वक अपने साथ ले लिया । मार्ग में मत्स्यभामा चगैरह कृष्ण की रानियाँ नेमिकुमार से विविध प्रकार से मजाक करके उन्हें मासारिक विषयों की ओर खींचने का निष्फल प्रयत्न कर रही थी । नेमिकुमार के हृदय पर उन बातों का कुछ भी प्रभाव न पड़ रहा था । वे मन ही मन मोह की चिड़म्यना पर विचार कर रहे थे । रैवत गिरि पर पहुँच कर सभी स्त्री पुरुष वसन्तोत्सव मनाने लगे । विविध प्रकार की क्रीड़ा करती हुई कृष्ण की रानियाँ नेमिकुमार के सामने कामोत्तेजक चेष्टाएँ करने लगीं । बीच में वे पूछती जाती थी—देवर जी ! हमें आशा है अगले वसन्तोत्सव में आप भी पत्नी सहित होंगे । भगवान् नेमिनाथ उनकी चेष्टाओं और उक्तियों से विकृत होने वाले न थे । मोह में फँसे हुए प्राणियों की बातों पर मन ही मन विचार करते हुए उन्हें हँसी आ गई । कृष्ण की रानियाँ ने ममझा, नेमिकुमार विवाह के लिए तैयार हो गए हैं । उसी समय यह प्रसिद्ध कर दिया गया कि नेमिकुमार ने विवाह करना मञ्जूर कर लिया है । वसन्तोत्सव पूरा हुआ । सभी यादव लौट आए । श्रीकृष्ण ने नेमिकुमार द्वारा विवाह की स्वीकृति का वृत्तान्त समुद्र-विजय तथा शिवादेवी से कहा । उन्हें यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने कृष्ण से फिर कहा—नेमिकुमार के लिए योग्य कन्या को ढूँढ़ना भी आप ही का काम है, इसे भी आप ही पूरा कीजिए ।

हम तो नेमिकुमार के विवाह का मारा भार आप पर डाल चुके हैं।

श्रीकृष्ण ने इस विषय में भी सत्यभामा से पूछा। राजीमती सत्यभामा की बहिन थी। उनकी दृष्टि में नेमिकुमार के लिए राजीमती के सिवाय कोई कन्या उपयुक्त न थी। राजीमती के लिए भी नेमिकुमार के सिवाय कोई योग्य वर न था। इसलिए सत्यभामा ने राजीमती के लिए प्रस्ताव रखा। श्रीकृष्ण, समुद्र-विजय और शिवादेवी सभी को यह बात बहुत पसन्द आई।

राजीमती को माँगने के लिए स्वयं श्रीकृष्ण महाराजा उग्रसेन के पास गए। उन्होंने भी श्रीकृष्ण का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। महारानी धारिणी तथा राजीमती को भी इसमें बहुत प्रसन्नता हुई। विवाह के लिये श्रावण शुक्ला पष्ठी का दिन निश्चित हुआ।

श्रीकृष्ण के लौटते ही महाराज समुद्रविजय ने विवाह की तैयारियाँ शुरू कर दीं। सभी यादवों को आमन्त्रण भेजे गए। द्वारिका नगरी को सजाया गया। जगह जगह राजे बजने लगे। मंगल गीत गाए जाने लगे। महाराज उग्रसेन यादवों के विशाल परिवार और उनकी श्रद्धा से परिनिर्भर थे। बरात का सत्कार करने के लिए उन्होंने भी विशाल आयोजन प्रारम्भ किया।

यादवों में उन दिनों मद्य और मांस का बहुत प्रचार था। पिना मांस के भोजन अधूरा समझा जाता था। उनका स्वागत करने के लिए मांस आवश्यक वस्तु थी। बरातियों के भोजन के लिए महाराज उग्रसेन ने भी अनेक पशु पक्षी एकत्रित किए। उन्हें विशाल बाड़े तथा पिंजरों में बन्द करके खिला पिला कर हृष्ट पुष्ट किया जाने लगा। मार जाने वाले पशुओं का बाड़ा उसी रास्ते पर था जिधर से बरात आने वाली थी।

धीरे २ बरात के प्रस्थान का दिन आ गया। हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों की चतुरगिणी सेना सजाई गई। ५

मूल्य वस्त्राभूषण पहिन कर अपने २ वाहन पर सवार हुए । प्रस्थान समय के मंगलवाद्य बजने लगे । गायक मंगल गीत गाने लगे । भगवान् अरिष्टनेमि को दूल्हे के रूप में मजाया जाने लगा । उन्हें विविध प्रकार की औपधियो तथा दमरू पदार्थों में युक्त सुगन्धित पानी में स्नान कराया गया । उज्ज्वल वेश और आभूषण पहनाए गए । वर के वेश में नेमिकुमार कामदेव के समान सुन्दर और सूर्य के समान तेजस्वी मालूम पहन लगे । उन्हें देख कर समुद्रविजय और शिवादेवी के हर्ष का पार न था ।

नेमिकुमार के बैठने के लिए श्रीकृष्ण का प्रधान रथ रत्न-जटित आभूषणों से मजाया गया । अनेक मंगलोपचारों के साथ वे रथ पर विराजे । उन पर छत्र सुशोभित हो गया । चँवर ढुलाए जाने लगे ।

परात में सब से आगे चतुरगिणी मेना आज्ञा व्रजते हुए चल रही थी । उसके पीछे मंगल गायक और बन्दीजनों का समूह था । उसके बाद हाथी और घोड़ों पर प्रमुख अतिथि अर्थात् पाहुनें सवार थे । उनके पीछे कुमार नेमिनाथ का रथ था । दोनों ओर घोड़ों पर सवार अंगरक्षक थे । सब से पीछे समुद्रविजय, वसुदेव, श्रीकृष्ण आदि यादव नरेश और मेना थी । शुभमुहूर्त में मंगलाचारों के बाद बरात ने प्रस्थान किया । झूमते हुए मतवाले हाथियों, हिन-हिनाते हुए घोड़ों, गूँजते हुए नगरों और फहराते हुए झण्डों के साथ पृथ्वी को कम्पित करती हुई परोत मयूरा की ओर रवाना हुई ।

जब बरात मयूरा के पास पहुँच गई, महाराज उग्रमेन अपने परिवार तथा मेना के साथ अगवानी (मामेला) करने के लिए आए ।

राजीमती के हृदय में अपार हर्ष हो रहा था । मुखियाँ उसका कर रही थी । वे उससे विविध प्रकार का मजाक कर रही । इतने में राजीमती की दाहिनी आँख फटकने लगी । साथ में

दूसरे दाहिने अङ्ग भी फट करने शुरू हुए। मनुष्य को जितना अधिक हर्ष होता है वह विघों के लिए उतना ही अधिक शङ्काशील रहता है। राजीमती के हृदय में भी किसी अज्ञात भय न स्थान कर लिया। उसने अङ्ग फट करने की बात मसियों से कही। मसियों ने कई प्रकार से समझाया किन्तु राजीमती के हृदय में मन्देह दूर न हुआ।

धन, शारीरिक बल या बुद्धि मात्र से कोई महापुरुष नहीं बनता। वास्तविक बढप्पन का मन्त्र आत्मा से है। जिस व्यक्ति की आत्मा जितनी उन्नत तथा उल्लसित है वह उतना ही बड़ा है। दूसरे के दुःखों को अपना दुःख समझना, प्राणी मात्र से मित्रता रखना, हृदय में मरलता तथा महदयता का वास होना महापुरुषों के लक्षण हैं। महापुरुष सासारिक भोगों में नहीं फँसते।

भगवान् अरिष्टनेमि की परात तोरणद्वार की ओर आ रही थी। धीरे धीरे उस बाड़े के सामने पहुँच गई जिसमें मारे जाने वाले पशु पत्नी रँधे थे। बन्धन में पडने के कारण वे विविध प्रकार से करुण क्रन्दन कर रहे थे। सारी परात निकल गई किन्तु किसी का ध्यान उन दीन पशुओं की ओर न गया। सासारिक भोगों में अन्धे रहे हुए व्यक्ति दूसरे के सुख दुःख को नहीं देखते। अपनी क्षणिक वृत्ति के लिये वे सारी दुनियाँ को भूल जाते हैं।

कमल कुमार नमिनाथ का रथ बाड़े के सामने आया। पशुओं का विलाप सुन कर उनका हृदय करुणा से भर गया।

भगवान् ने सारथी से पूछा— उन दीन पशुओं को बन्धन से क्यों डाला गया है ?

सारथी ने उत्तर दिया— प्रभो ! ये सब महाराज उग्रसेन न आप के विवाह में भोज देने के लिए इकट्ठे किए हैं। यादों का भोजन मास के बिना पूरा नहीं होता।

भगवान् ने आश्चर्यचकित होते हुए कहा— मेरे विवाह में माम

मूल्य वस्त्राभूषण पहिन कर अपने २ वाहन पर सवार हुए । प्रस्थान समय के मंगलवाद्य बजने लगे । गायक मंगल गीत गाने लगे । भगवान् अरिष्टनेमि को दूल्हे के रूप में मजाया जाने लगा । उन्हें विविध प्रकार की औषधियों तथा दमरं पदार्थों में युक्त सुगन्धित पानी में स्नान कराया गया । उज्ज्वल वेश और आभूषण पहनाए गए । वर के वेश में नेमिकुमार कामदेव के समान सुन्दर और सूर्य के समान तेजस्वी मालूम पड़ने लगे । उन्हें देख कर ममुद्रविजय और शिवादेवी के हर्ष का पार न था ।

नेमिकुमार के बैठने के लिए श्रीकृष्ण का प्रधान रथ रत्न-जटित आभूषणों में मजाया गया । अनेक मंगलोपचारों के साथ वे रथ पर विराजे । उन पर छत्र सुशोभित हो गया । चँवर हुलाए जाने लगे ।

बरात में मन में आगे चतुरगिणी मेना बाजा बजाते हुए चल रही थी । उसके पीछे मंगल गायक और बन्दीजनों का समूह था । उसके बाद हाथी और घोड़ों पर प्रमुख अतिथि अर्थात् पाहुने सवार थे । उनके पीछे कुमार नेमिनाथ का रथ था । दोनों ओर घोड़ों पर सवार अग्रदूत थे । मन में पीछे ममुद्रविजय, वसुदेव, श्रीकृष्ण आदि यादव नरेश और सेना थी । शुभमुहूर्त में मंगलाचार के बाद बरात ने प्रस्थान किया । भूमते हुए मतगले हाथियों, हिन हिनाते हुए घोड़ों, गूँजते हुए नगरों और फहराते हुए झण्डों के साथ पृथ्वी को कम्पित करती हुई बरात मथुरा की ओर रवाना हुई ।

जब बरात मथुरा के पास पहुँच गई, महाराज उग्रसेन अपने परिवार तथा मेना के साथ अगवानी (मामेला) करने के लिए आए । राजीमती के हृदय में अपार हर्ष हो रहा था । सखियाँ उसके कर रही थी । वे उसमें विविध प्रकार का मजाक कर रही थीं । इतने में राजीमती की दाहिनी आँख फटकने लगी । साथ में

दूसरे दाहिने अङ्ग भी फट करने शुरू हुए। मनुष्य को जितना अधिक हर्ष होता है वह विघ्नो के लिए उतना ही अधिक शङ्काशील रहता है। राजीमती के हृदय में भी किमी अज्ञात भय न स्थान कर लिया। उसने अङ्ग फट करने की बात मस्त्रियों में कही। मस्त्रियों ने कई प्रकार से समझाया किन्तु राजीमती के हृदय में सन्देह दूर न हुआ।

धन, शारीरिक बल या बुद्धि मात्र से कोई महापुरुष नहीं बनता। वास्तविक चढप्पन का मध्यन्ध आत्मा में है। जिस व्यक्ति की आत्मा जितनी उन्नत तथा उल्लवान् है वह उतना ही बड़ा है। दूसरे के दुःखों को अपना दुःख समझना, प्राणीमात्र में मित्रता रखना, हृदय में मरलता तथा महदयता का वास होना महापुरुषों के लक्षण है। महापुरुष सासारिक भोगों में नहीं फँसते।

भगवान् अरिष्टनेमि की बरात तोरणद्वार की ओर आ रही थी। धीरे धीरे उस बाड़े के सामने पहुँच गई जिसमें मारे जाने वाले पशु पक्षी रेंधे थे। बन्धन में पडने के कारण वे विविध प्रकार से करुण कन्दन कर रहे थे। मागी बरात निकल गई किन्तु किमी का ध्यान उन दीन पशुओं की ओर न गया। सासारिक भोगों में अन्धे गने हुए व्यक्ति दूसरे के सुख दुःख को नहीं देखते। अपनी चणिक तृप्ति के लिये वे भारी दुनियाँ को भूल जाते हैं।

क्रमशः कुमार नेमिनाथ का रथ बाड़े के सामने आया। पशुओं का पिलाप सुन कर उनका हृदय करुणा से भर गया।

भगवान् ने मारथी में पूछा— उन दीन पशुओं को बन्धन में क्यों डाला गया है ?

मारथी ने उत्तर दिया— प्रभो ! ये सब महाराज उग्रमेन आप के विवाह में लिए इकट्ठे किए हैं।
 का भोजन मां के लिए है।
 भगवान् ने मेरे वि

भोजन ! जिहा की चणिक तृप्ति के लिए इतनी बड़ी हत्या ! मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए कितना अन्धा हो जाता है ? अपनी चणिक लालमा के लिए हजारों प्राणियों का जीवन लेते हुए भी नहीं हिचकता । मला इन दीन अनाथ पशुओं ने किसी का क्या पिगाड़ा है ? फिर इन्हे वन्यन में क्यों डाला जाय ? इनके प्राण क्यों लिए जायें ? क्या मनुष्य को अपनी इच्छातृप्ति के लिए दूसरों के प्राण लेने का अधिकार है ? क्या यह न्याय है कि मधल निर्मल के प्राण ले ले ? क्या यह मानवता है ? नहीं, यह मानवता के नाम पर अत्याचार है । भयङ्कर अन्याय है । मेरा जीवन संसार में न्याय और मृत्यु की स्थापना के लिए है । फिर मैं अपने ही निमित्त में होने वाले इस अन्याय का अनुमोदन कैसे कर सकता हूँ ? मैं अहिंसाधर्म की प्ररूपणा करने वाला हूँ, फिर हिंसा को श्रेयस्कर कैसे मान सकता हूँ ?

भगवान् की इच्छा देख कर मारथी ने सभी प्राणियों को वन्यन मुक्त कर दिया । आनन्दित होते हुए पत्नी आकाश में उड़ गई । पशु वन की ओर भागे । भगवान् द्वारा अभयदान मिलने पर उन के हर्ष का पारावार न रहा ।

भगवान् ने प्रसन्न होकर अपने बहुमूल्य आभूषण मारथी को पारितोषिक में दे दिए और कहा—सखे ! रथ को वापिस ले चलो । जिनके लिए इस प्रकार का महारम्भ हो ऐसा विवाह मुझे पसन्द नहीं है । मारथी ने रथ को वापिस भौड़ लिया । बरात-गिना पर की हो गई । चारों ओर खलजली मच गई ।

महल की खिड़की से राजीमती यह दृश्य देख रही थी । उसके हृदय की आगझा उत्तरोत्तर तीव्र हो रही थी । नेमिकुमार के रथ को वापिस होते देख कर वह त्रेहोश होकर गिर पड़ी । दासियाँ और सखियाँ दौड़ाई गई :

नेमिकुमार का रथ वापिस जा रहा था। कृष्ण वासुदेव महाराज समुद्रविजय तथा यदुनग के सभी उड़े उड़े व्यक्ति उन्हें समझाने आए किन्तु कुमार नेमिनाथ अपने निश्चय पर अलट थे। वे सामागिक भोग विलासों को छोड़ने का निश्चय कर चुके थे। उन्होंने मार्मिक शब्दों में कहना शुरू किया—

मुझे राजीमती से द्वेष नहीं है। जो व्यक्ति ससार के सभी प्राणियों को सुखी बनाना चाहता है वह एक राजीमती को दुःख में कैसे डाल सकता है। किन्तु मोह में पड़े हुए ससार के भोले प्राणी यह नहीं समझते कि वास्तविक सुख कहाँ है। क्षणिक भोगों के दाम बन कर इन्द्रियविषयों के गुलाम होकर वे तुच्छ वामनाओं की वृत्ति में ही सुख मानते हैं। उन्हें यह नहीं मालूम कि ये ही इन्द्रिय विषय उनके लिए बन्धन स्वरूप हैं। परिणाम में बहुत दुःख देने वाले हैं।

ससार में दो प्रकार की वस्तुएं हैं—श्रेय और प्रेय। जो वस्तुएं इन्द्रियों और मन को प्रिय लगती हैं किन्तु परिणाम में दुःख देने वाली हैं वे प्रेय कही जाती हैं। जिनसे आत्मा का कल्याण होता है, इन्द्रिया और मन ग्राह्य विषयों की ओर जाने से रुक जाते हैं उन्हें श्रेय कहा जाता है। इन्द्रिय और मन के दास बने हुए भोले प्राणी प्रेय वस्तु को अपनाते हैं और अनन्त ससार में रुलते हैं। इस के विपरीत विवेकी पुरुष श्रेय वस्तु को अपनाते हैं और उसके द्वारा मोक्ष के नित्य सुख को प्राप्त करते हैं।

भगवान् अरिष्टनेमि की बातों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि एक हजार यादव ससार को बन्धन समझ कर उन्हीं के साथ दीक्षा लेने को तैयार होगए। श्रीकृष्ण और समुद्रविजय वगैरह प्रमुख यादव भी निरुत्तर होगए और उन्हें रोकने का प्रयत्न छोड़ कर अलग होगए। भगवान् नेमिनाथ सारी बरात को छोड़ कर अपने महल की ओर रवाना हुए।

भोजन ! जिह्वा की क्षणिक तृप्ति के लिए इतनी बड़ी हत्या ! मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए कितना अन्धा हो जाता है ? अपनी क्षणिक लालमा के लिए हजारों प्राणियों का जीवन लेते हुए भी नहीं हिचकता । भला इन दीन अनाथ पशुओं ने किसी का क्या गिगाडा है ? फिर इन्हें बन्धन में क्यों डाला जाय ? इनके प्राण क्यों लिए जायें ? क्या मनुष्य को अपनी इच्छातृप्ति के लिए दूसरों के प्राण लेने का अधिकार है ? क्या यह न्याय है कि ममल निर्मल के प्राण ले ले ? क्या यह मानवता है ? नहीं, यह मानवता के नाम पर अत्याचार है । भयङ्कर अन्याय है । मेरा जीवन समार में न्याय और मृत्यु की स्थापना के लिए है । फिर मैं अपने ही निमित्त में होने वाले इस अन्याय का अनुमोदन कैसे कर सकता हूँ ? मैं अहिंसाधर्म की प्ररूपणा करने वाला हूँ, फिर हिंसा को श्रेयस्कर कैसे मान सकता हूँ ?

भगवान् की इच्छा देख कर मारथी ने सभी प्राणियों को बन्धन मुक्त कर दिया । आनन्दित होते हुए पत्नी आकाश में उड़ गई । पशु उन की ओर भागे । भगवान् द्वारा अभयदान मिलने पर उन के हर्ष का पारावार न रहा ।

भगवान् ने प्रमत्त होकर अपने बहुमूल्य आभूषण मारथी को पारितोषिक में दे दिए और कहा—सखे ! रथ को वापिस ले चलो । जिसके लिए हम प्रकार का महारम्म हो ऐसा विवाह मुझे पसन्द नहीं है । मारथी ने रथ को वापिस मोड़ लिया । बरात-गिना पर की हो गई । चारों ओर खलपत्नी मच गई ।

महल की सिडकी में राजीमती यह दृश्य देख रही थी । उसके हृदय की आशङ्का उत्तरोत्तर तीव्र हो रही थी । नेमिकुमार के रथ को वापिस होते देख कर वह बेहोश होकर गिर पड़ी । दामियाँ और मखियाँ धवरा गई ।

नेमिकुमार का रथ वापिस जा रहा था। कृष्ण वासुदेव महाराज समुद्रविजय तथा यदुवश के सभी बड़े बड़े व्यक्ति उन्हें समझाने आए किन्तु कुमार नेमिनाथ अपने निश्चय पर अलट थे। ये सामारिक भोग विलासों को छोड़ने का निश्चय कर चुके थे। उन्होंने मार्मिक शब्दों में कहना शुरू किया—

मुझे राजीमती से द्वेष नहीं है। जो व्यक्ति मत्सर के सभी प्राणियों को सुखी बनाना चाहता है वह एक राजीमती को दुःख में कैसे डाल सकता है। किन्तु मोह में पड़े हुए ममार के भोले प्राणी यह नहीं समझते कि वास्तविक सुख कहाँ है। क्षणिक भोगों के दाम बन कर इन्द्रियविषयों के गुलाम होकर ये तुच्छ वासनाओं की वृत्ति में ही सुख मानते हैं। उन्हें यह नहीं मालूम कि ये ही इन्द्रियविषय उनके लिए बन्धन स्वरूप हैं। परिणाम में बहुत दुःख देने वाले हैं।

ममार में दो प्रकार की वस्तुएं हैं—प्रेय और प्रेय। जो वस्तुएं इन्द्रियों और मन को प्रिय लगती हैं किन्तु परिणाम में दुःख देने वाली हैं वे प्रेय कही जाती हैं। जिनसे आत्मा का कल्याण होता है, इन्द्रिया और मन बाह्य विषयों की ओर जाने से रुक जाते हैं उन्हें प्रेय कहा जाता है। इन्द्रिय और मन के दाम बने हुए भोले प्राणी प्रेय वस्तु को अपनाते हैं और अनन्त ससार में रूलते हैं। इस के विपरीत विप्रेय की पुरुष प्रेय वस्तु को अपनाते हैं और उनके द्वारा मोक्ष के नित्य सुख को प्राप्त करते हैं।

भगवान् अरिष्टनेमि की बातों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि एक हजार यादव ससार को बन्धन समझ कर उन्हीं के माथ दीक्षा लेने को तैयार होगए। श्रीकृष्ण और समुद्रविजय वर्गारह प्रमुख ५ ५ भी निरुत्तर होगए और उन्हें रोकने का प्रयत्न छोड़ कर होगए। भगवान् नेमिनाथ सारी रात को छोड़ कर अपने ५५ की ओर रवाना हुए।

मोजन ! जिह्वा की चणिक तृप्ति के लिए इतनी बड़ी हत्या ! मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए कितना अन्धा हो जाता है ? अपनी चणिक लालमा के लिए हजारों प्राणियों का जीवन लेते हुए भी नहीं हिचकता । भला इन दीन अनाथ पशुओं ने किसी का क्या बिगाड़ा है ? फिर इन्हें वन्यन में क्यों डाला जाय ? इनके प्राण क्यों लिए जायें ? क्या मनुष्य को अपनी इच्छातृप्ति के लिए दूसरों के प्राण लेने का अधिकार है ? क्या यह न्याय है कि मयल निर्मल के प्राण ले ले ? क्या यह मान्यता है ? नहीं, यह मान्यता के नाम पर अत्याचार है । भयङ्कर अन्याय है । मेरा जीवन संसार में न्याय और मृत्यु की स्थापना के लिए है । फिर मैं अपने ही निमित्त में होने वाले इस अन्याय का अनुमोदन कैसे कर सकता हूँ ? मैं अहिंसावर्म की प्ररूपणा करने वाला हूँ, फिर हिंसा को त्रेयस्कर कैसे मान सकता हूँ ?

भगवान् की इच्छा देख कर मारथी ने सभी प्राणियों को गन्धन मुक्त कर दिया । आनन्दित होते हुए पक्षी आकाश में उड़ गए । पशु गन की ओर भागे । भगवान् द्वारा अभयदान मिलने पर उन के हर्ष का पारावार न रहा ।

भगवान् ने प्रसन्न होकर अपने गुरुमूल्य आभूषण सारथी को पारितोषिक में दे दिए और कहा—मरे ! रथ को वापिस ले चलो । जिनके लिए इस प्रकार का महारम्भ हो ऐसा विवाह मुझे पसन्द नहीं है । मारथी ने रथ को वापिस मोड़ लिया । वरात बिना पर की हो गई । चारों ओर खलबली मच गई ।

महल की खिडकी से राजीमती यह दृश्य देख रही थी । उसके हृदय की आगङ्गा उत्तरोत्तर तीव्र हो रही थी । नमिकुमार के रथ को वापिस होते देख कर वह बेहोश होकर गिर पड़ी । ठासियाँ और मखियाँ घबरा गई ।

हो चुका जिस दिन मैंने अपने हृदय में नेमिकुमार को पति मान लिया। उस दिन से मैं उनकी हो चुकी। उनके मित्राय सभी पुरुष मेरे लिए पिता और भाई के समान हैं। कुमार स्वयं भी मुझे अपनी पत्नी बनाना स्वीकार करके ही यहाँ आए थे। मुझे इस बात का गौरव है कि उन्होंने मुझे अपनी पत्नी बनाने के योग्य समझा। ससार की सारी स्त्रियों को छोड़ कर मुझे ही यह सन्मान दिया।

यह भी मेरे लिए हर्ष की बात है कि वे समार के प्राणियों को अभय दान देने के लिए ही वापिस गए थे। अगर वे मुझे छोड़ कर किसी दूसरी कन्या से विवाह करने जाते तो मेरे लिए यह अपमान की बात होती किन्तु उन्होंने अपने उस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए विवाह बन्धन में पड़ना उचित नहीं समझा। यह तो मेरे लिए अभिमान की बात है कि मेरे पति समार का कन्यायाग करने के लिए जा रहे हैं। दुःख असल इतना ही है कि वे मुझे विना दर्शन दिए चले गए। अगर विवाह हो जाने के बाद वे मुझे भी अपने साथ ल चलते और मुक्ति के मार्ग में अग्रसर होते हुए मुझे भी अपने साथ रखते तो कितना अच्छा होता। क्या मैं उनके पथ में जावा डालती? किन्तु नेमिकुमार एक बार मुझे अपना चुके हैं। अपने चरणों में शरण दे चुके हैं। महापुरुष जिसे एक बार शरण दे देते हैं फिर उसे नहीं छोड़ते। नेमिकुमार भी मुझे कभी नहीं छोड़ सकते। समार वे प्राणियों को दुःख से छुड़ाने के लिए उन्हाने सभी भौतिक सुखों को छोड़ा है। ऐसी दशा में वे मुझे दुःख में कैसे छोड़ सकते हैं? मेरा अवश्य उद्धार करेंगे।

राजीमती में स्त्रीहृदय की कोमलता, महामती की पवित्रता और महापुरुषों की वीरता का अपूर्व सम्मिश्रण था। उसकी विचार धारा कोमलता के साथ उठ कर दृढ़ता के रूप में परिणत हो गई। उसे परा विश्वास हो गया कि नेमिकुमार अवश्य

भगवान् के जाते ही वरातियों की मारी उमरें हवा हो गई। सभी के चेहरे पर उदामी छा गई। चाँद के छिप जाने पर जो दशा रात्रि की होती है वही दशा नेमिनाथ के चले जाने पर रात की हुई। महाराज उग्रमेन की दशा और भी विचित्र हो रही थी। उन्हें कुछ नहीं सूझ रहा था कि इस समय क्या करना चाहिए।

उस समय राजीमती के हृदय की दशा अवर्णनीय थी। नेमिकुमार के रथ को अपने महल की ओर आते देख कर उसने सोचा था— मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ ! त्रिलोकपूज्य भगवान् स्वयं मुझे बरने के लिए आ रहे हैं। मैं यादवों की कुलपथू बनूँगी। महाराजा समुद्रविजय और महारानी गिजादेवी मेरे श्वशुर और सास होंगे। मुझ से बढ़ कर सुखी मसार में कौन है ?

राजीमती अपने भागी सुखों की कल्पनाओं में मन ही मन सुगम हो रही थी, इतने में उमने नेमिकुमार को वापिस लाँटते देखा। वह इस आघात को न सह सकी और मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। चेतना आते ही मारा दुःख बाहर उमड़ आया। वह अपना सर्वस्व नेमिकुमार के चरणों में अर्पित कर चुकी थी, उन्हें अपना आराध्य देव मान चुकी थी। जीवन नैया की पतवार उनके हाथों में सौंप चुकी थी। उनके विमुख होने पर वह अपने को सूती मी, निराधार सी, नाविक रहित नाका मी मानने लगी। जिस प्रकार सूर्य और दिन का मतलब सम्बन्ध है, राजीमती उसी प्रकार नेमिकुमार और अपने सम्बन्ध को मान चुकी थी। सूर्य के बिना दिन कसमाने नेमिकुमार के बिना वह अपना कोई अस्तित्व ही न समझती थी।

सखियों कहने लगी—अभी कौनसा विवाह हो गया है ? उन सभी अच्छे-कोई दूँधरा घर मिल जाएगा।

राजीमती ने उत्तर दिया—विवाह क्या होता है ? क्या अग्नि प्रदक्षिणा देने से ही विवाह होता है ? मेरा विवाह तो उसी दिन

मति देकर अपने और कुमार रथनेमि के जीवन को सुखमय बनाइए।

राजीमती को दूती की बात सुन कर आश्चर्य हुआ। दोनों भाइयों में इतना अन्तर देख कर बड़ चकित रह गई।

साधारण स्त्री होती तो दूती का प्रस्ताव मञ्जूर कर लेती या आनन्धा होने पर अपना क्रोध दूती पर उतारती। उसे डाटती, फटकारती, दण्ड देने तक तैयार हो जाती। किन्तु राजीमति सती होने के साथ साथ बुद्धिमती भी थी। उसकी दृष्टि में पार्षा पर क्रुद्ध होने की अपेक्षा प्रसन्नपूर्ण उसे सन्मार्ग में लाना श्रेयस्कर था। उसने सोचा— दूती को फटकारने से सम्भव है बात बड़ जाय और उससे रथनेमि के सन्मान में बड़ा लगे। रथनेमि कुलीन पुरुष हैं। इस समय कामान्ध होने पर भी ममभाने से सुमार्ग पर लाए जा सकते हैं। यह सोच कर उसने दूती से कहा— रथनेमि के इस प्रस्ताव का उत्तर मैं उन्हें ही दूँगी। इस लिए तुम जाओ और उन्हें ही भेज दो। साथ में कह देना कि मैं अपनी पसन्द के अनुसार किसी पेय वस्तु को लेते आऊँ।

यद्यपि राजीमती ने यह उत्तर दूसरे अभिप्राय से दिया था, किन्तु दूती ने उसे अपने प्रस्ताव की स्वीकृति ही समझा। वह प्रसन्न होती हुई रथनेमि के पास गई और सारी बातें सुना दी। रथनेमि ने भी उसे प्रस्ताव की स्वीकृति ही समझा।

रथनेमि ने सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहने। बड़ी उमड़ों के साथ पेय वस्तु तैयार कराई। रत सन्चित स्वर्ण थाल में कटोरा रख कर बहुमूल्य रेशमी वस्त्र में उसे ढक दिया। एक सेवक को साथ लेकर राजीमती के महल में पहुँचा। भांगी सुखा की आशा में वह फूला न ममाता था।

राजीमती ने रथनेमि का स्वागत किया। वह रहने लगी—
का दर्शन करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। दूती ने आपकी

मेरा उद्धार करेंगे। भगवान् के गुणगान और उन्हीं के स्मरण में लीन रहती हुई वह उस दिन की प्रतीक्षा करने लगी।

भगवान् अरिष्टनेमि के छोटे भाई का नाम रथनेमि था। एक ही माता पिता के पुत्र होने पर भी उन दोनों के स्वभाव में महान् अन्तर था। नेमिनाथ जिन वस्तुओं को तुच्छ समझते थे रथनेमि उन्हीं के लिए तरसते थे। इन्द्रियों को तृप्त करना, सांसारिक विषयों का भोग करना तथा कामभोगों को भोगना ही वे अपने जीवन का ध्येय मानते थे।

उन्होंने राजीमती के सौन्दर्य और गुणों की प्रशंसा सुन रखी थी। वे चाहते थे कि राजीमती उन्हें ही प्राप्त हो किन्तु अरिष्टनेमि के साथ उसके विवाह का निश्चय हो जाने पर मन मगोस कर रह गए। अरिष्टनेमि विवाह नहीं करेंगे इस निश्चय को जान कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके हृदय में फिर आशा का संचार हुआ और राजीमती को प्राप्त करने का उपाय मोचने लगे।

इस कार्य के लिए रथनेमि ने एक दूती को राजीमती के पास भेजा। पुरस्कार के लोभ में पड़ कर दूती राजीमती के पास गई। एकान्त अवसर देख कर उमने रथनेमि की इच्छा राजीमती के सामने प्रकट की और विविध प्रकार से उसे सांसारिक सुखों की ओर आकृष्ट करके यह सम्बन्ध स्वीकार करने का आग्रह किया। उसने रथनेमि के सौन्दर्य, वीरता, रमिकता आदि गुणों की प्रशंसा की। विषयसुखों की रमणीयता का वर्णन किया और राजीमती से फिर कहा—आपको सन प्रकार के सुख प्राप्त हैं। शारीरिक सम्पत्ति है, लक्ष्मी है, प्रभुता है। रथनेमि सरीसृप सुन्दर और सहृदय राजकुमार आपके दास बनने को तैयार हैं। मानव जीवन और सन प्रकार के सांसारिक सुखों को प्राप्त करके उन्हें व्यर्थ जाने देना बुद्धिमत्ता नहीं है। अतः इस प्रस्ताव को स्वीकार कीजिए और अनु

राजीमती ने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। ये मन ही मन बहुत खुश हो रहे थे। इतने में उन्होंने देखा कि राजीमती उमी कटोरे में वमन कर रही है। रथनेमि कोप उठे और आशङ्का करने लगे कि कहीं कटोरे में ऐसी वस्तु तो नहीं मिल गई जो हानिकारक हो।

वे इस प्रकार सोच ही रहे थे कि राजीमती ने वमन से भरा हुआ कटोरा उसके सामने किया और कहा—राजकुमार ! लीजिए, इसे पी लीजिए।

वमन के कटोरे को देख कर रथनेमि पीछे हट गए। आँखें क्रोध से लाल हो गईं। ओठ फटने लगे। गरजते हुए कहने लगे—राजीमती ! तुम्हें अपने रूप पर इतना घमण्ड है ? किसी भद्र पुरुष को बुला कर तुम उसका अपमान करती हो ? क्या मुझे कुत्ता या कोआ समझ रखा है जो वमन की हुई वस्तु पिलाना चाहती हो ?

राजीमती ने उपदेश देने की इच्छा से कुमार को शान्त करते हुए कहा—राजकुमार ! शान्ति रखिए। मैं आपके प्रेम की परीक्षा करना चाहती हूँ।

रथनेमि—क्या परीक्षा का यही उपाय है ?

राजीमती—हाँ ! यही उपाय है। यदि आप इसे पी जाते तो मैं समझती कि आप मुझे स्वीकार कर सकेंगे।

रथनेमि—क्या मैं वमा हुआ पदार्थ पी जाऊँ ?

राजीमती—वमा हुआ पदार्थ है तो क्या हुआ ? हे तो वही जो आप लाए थे और जो आपको अत्यधिक प्रिय है। इसके रूप, रस या रंग में कोई फर्क नहीं पड़ा है। वरन् एक बार मेरे घेठ तक जा कर निज़ल आया है।

रथनेमि—इसमें क्या, हे तो वमन ही ?

राजीमती—मेरे साथ विवाह करने की इच्छा रखने वाले के लिए वमन पीना कठिन नहीं है।

प्रशंसा की थी वे सभी गुण आप में मालूम पड़ रहे हैं। जब से उसने विवाह का प्रस्ताव रक्खा मैं आपकी प्रतीक्षा में थी।

राजीमती की बातें सुनते समय रथनेमि के हृदय में उत्तरोत्तर अधिक आशा का मंचार हो रहा था। वह समझ रहा था राजीमती ने मुझे स्वीकार कर लिया है। उसने उत्तर दिया—

राजकुमारी ! मैंने आपके सौन्दर्य और गुणों की प्रशंसा बहुत दिनों से सुन रखी थी। बहुत दिनों से मैंने आपको अपने हृदय की अधीश्वरी मान रक्खा था, किन्तु भाई के साथ आपके सम्बन्ध की बात सुन कर चुप होना पड़ा। मालूम पड़ता है मेरा भाग्य बहुत तेज है इसी लिए नेमिकुमार ने इस सम्बन्ध को नामञ्जूर कर दिया। निश्चय होने पर भी मैं एक बार आपके मुख से स्वीकृति के शब्द सुनना चाहता हूँ, फिर विवाह में देर न होगी।

राजीमती मन ही मन सोच रही थी— कामान्ध व्यक्ति अपने सारे विप्रेर को खो बैठता है। मेरे बाह्य रूप पर आकर्षित होकर ये अपने भाई के नाते को भी भूल रहे हैं। भगवान् के त्याग को ये अपना सौभाग्य मान रहे हैं। मोह की मिढ्मिना विचित्र है। इस के जश में पड़ कर मनुष्य भयङ्कर से भयङ्कर पाप करते हुए नहीं हिचकता। भगवान् के साथ मेरा विवाह हो जाने पर भी, इनके हृदय में यह दुर्भाग्य दूर न होती और उसे पूर्ण करने के लिये ये किसी भी पाप से नहीं हिचकते।

राजीमती के कहने पर रथनेमि ने पेय वस्तु का कटोरा उसके सामने रख दिया और कहा— आपने बहुत ही तुच्छ वस्तु मँगवाई। मैं आपके लिये बड़ी से बड़ी वस्तु लाने के लिये तैयार हूँ।

राजीमती उस कटोरे को उठा कर पी गई साथ में पहले से पाम रखी हुई उस दवा को भी खा गई जिसका प्रभाव तत्काल बमन था। कटोरे को पीते देखा रथनेमि को पक्का विश्वास हो गया कि

लिया, उमे ही अपना पति माना ।

भगवान् अरिष्टनेमि तोरण द्वार से लौट कर अपने महल में चले आए । उमी समय तीर्थङ्करों की मर्यादा के अनुसार लोकान्तिक देव उन्हें चेताने के लिए आए और सेवा में उपस्थित होकर कहने लगे—प्रभो ! संसार में पाप बहुत बढ़ गया है । लोग विषय वामनाओं में लिप्त रहने लगे हैं । बलवान् प्राणी दुर्बलों को मता रहे हैं । जनता को हिंसा, स्वार्थ, विषयवासना आदि पाप प्रिय मालूम पड़ने लगे हैं । इस लिए प्रभो ! धर्मतीर्थ की प्रवर्तना कीजिये जिससे प्राणियों को सच्चे सुख का मार्ग प्राप्त हो और पृथ्वी पर पाप का भार हल्का हो । भव्य प्राणी अपने कल्याण के लिए आप की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

लोकान्तिक देवों की प्रार्थना सुन कर भगवान् ने वार्षिक दान देना प्रारम्भ कर दिया ।

रथनेमि को भी संसार से विरक्ति हो गई थी । भगवान् के साथ दीक्षा लेने की इच्छा से वे भगवान् के दीक्षादिवस की प्रतीक्षा करने लगे । दूसरे यादव भी जो भगवान् के उपदेश से प्रभावित हो कर संसार छोड़ने को तैयार हो गए थे वे भी उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे ।

महाराजा उग्रसेन को जब यह मालूम पड़ा कि अरिष्टनेमि वार्षिक दान दे रहे हैं और उसके अन्त में दीक्षा ले लेंगे तो उन्होंने राजीमती का विवाह किसी दूसरे पुरुष से करने का विचार किया । इस के लिए राजीमती की स्वीकृति लेना आवश्यक था ।

इस लिए महाराज उग्रसेन रानी के साथ राजीमती के पास गए । वे कहने लगे—बेटी ! अब तुम्हें अरिष्टनेमि का ध्यान हृदय में निकाल देना चाहिए । उन्होंने दीक्षा लेने का निश्चय कर है । यह अच्छा ही हुआ कि विवाह होने के पहले ही वे

रथनेमि— क्यों ?

राजीमती—जिस प्रकार यह पदार्थ मेरे द्वारा त्यागा हुआ है उसी प्रकार मैं आप के भाई द्वारा त्यागी हुई हूँ। जैसे मैं आपको प्रिय हूँ उसी प्रकार यह पदार्थ भी आप को बहुत प्रिय है। दोनों के समान होने पर भी इसे पीने वाले को आप कुत्ते या कौए के समान समझते हैं और मुझे अपनाते समय यह विचार नहीं करते

राजीमती की युक्तिपूर्ण बातें सुन कर रथनेमि का सिर लज्जा से नीचे झुक गया। उसे मन ही मन पश्चात्ताप होने लगा।

राजीमती फिर कहने लगी—यादवकुमार ! मेरे साथ विवाह का प्रस्ताव भेजते समय आपने यह विचार नहीं किया कि मैं आप के बड़े भाई की परित्यक्ता पत्नी हूँ। मोहवश आप मेरे साथ विवाह करने को तैयार हो गए। आप के बड़े-भाई मेरा त्याग कर के चले गए इसे आपने अपना सौभाग्य माना। आप भी उन्हीं माता पिता के पुत्र हैं जिन के भगवान् स्वयं हैं, फिर मोचिए मोह ने आप को कितना नीचे गिरा दिया।

रथनेमि लज्जा से पृथ्वी में गड़े जा रहे थे। वे कहने लगे—राज-कुमारी ! मुझे अपने कार्य के लिए बहुत पश्चात्ताप हो रहा है। मेरा अपराध क्षमा कीजिए। आपने उपदेश देकर मेरी आँखें खोल दीं।

रथनेमि चुपचाप राजीमती के महल से चले आए। उनके हृदय में लज्जा और ग्लानि थी। सामाजिक विषयों से उन्हें प्रेरित हो गई थी। उन्होंने मासारिक बन्धनों को छोड़ने का निश्चय कर लिया।

राजीमती का भगवान् अरिष्टनेमि के साथ लौकिक दृष्टि से विवाह नहीं हुआ था। अगर वह चाहती तो रथनेमि या किसी भी योग्य पुरुष से विवाह कर सकती थी। इस के लिए उसे लोक में निन्दा का पात्र न बनना पड़ता फिर भी उसने किसी दूसरे पुरुष से विवाह नहीं किया। जीवन पर्यन्त कुमारी रहना स्वीकार कर

पुरुष के लिए स्थान नहीं है। दूसरे के पिचारों पर अपने हृदय को डायॉडोल करना कायरता है।

माता— नेमिकुमार (अरिष्टनेमि) तो दीक्षा लेंगे। क्या उन के पीछे तुम भी ऐसी ही रह जाओगी ?

राजीमती— माता जी ! जब वे दीक्षा लेंगे तो मैं भी उनके मार्ग पर चलूँगी। पति कठोर मयम का पालन करे तो पत्नी को भोगविलासों में पड़े रहना शोभा नहीं देता। जिस प्रकार वे काम क्रोध आदि आत्मा के छत्रुओं को जीतेंगे उसी प्रकार मैं भी उन पर विजय प्राप्त करूँगी।

राजीमती के उत्तर के सामने माता पिता कुछ न कह सके। वे राजीमती की सरियों को उमे ममभाने के लिए कह कर चले गए।

सरियों ने राजीमती को ममभाने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु वह अपने निश्चय पर अटल थी। उसका हृदय, उसकी बुद्धि, उसकी वाणी तथा उसके प्रत्येक रोम में नेमिकुमार ममा चुके थे। वह उन के प्रेम में ऐसी रग गई थी, जिस पर दूसरा रग चढ़ना अमम्भय था। वह दिन रात उन के स्मरण में रहती हुई वैरागिन की तरह समय बिताने लगी।

मती स्त्रियों अपने जीवन को पति के जीवन में, अपने अस्तित्व को पति के अस्तित्व में तथा अपने सुख को पति के सुख में मिला देती हैं। उनका प्रेम सच्चा प्रेम होता है। उस में वासना की मुख्यता नहीं रहती। राजीमती के प्रेम में तो वामना की गन्ध भी न थी। उसे नेमिकुमार द्वारा किसी सामारिक सुख की गति नहीं हुई थी, न भविष्य में प्राप्त होने की आशा थी फिर भी वह उनके प्रेम की मतवाली थी। वह अपनी आत्मा को भगवान् अरिष्टनेमि की आत्मा से मिला देना चाहती थी। शारीरिक सम्बन्ध की उसे परवाह न थी।

शुद्ध प्रेम मनुष्य को ऊँचा उठाता है। एक व्यक्ति में शुरू हो

गए। विवाह के बाद तुम्हें त्याग देते या दीक्षा ले लेते तो सारे जीवन दुःख उठाना पड़ता। अब हम तुम्हारा विवाह किसी दूसरे राजकुमार से करना चाहते हैं। इसमें नीति, धर्म या समाज की ओर से किसी प्रकार का विरोध नहीं है। तुम्हारी क्या इच्छा है?

राजीमती— पिताजी ! मेरा विवाह तो हो चुका है। हृदय से किसी को पति रूप में या पत्नीरूप में स्वीकार कर लेना ही विवाह है। उसके लिए ग्राह्य दिखावे की आवश्यकता नहीं है। ग्राह्य क्रियाएँ केवल लोगों को दिखाने के लिए होती हैं। असली विवाह हृदय का सम्बन्ध है। मैं इस विवाह को कर चुकी हूँ। आर्य कन्या को आप दुबारा विवाह करने के लिये क्यों कह रहे हैं ?

माता— बेटा ! हम तुम्हें दूसरे विवाह के लिए नहीं कह रहे हैं। विवाह एक लौकिक प्रथा है और जब तक वह पूरी नहीं हो जाती, कन्या और वर दोनों अविवाहित माने जाते हैं, दुनियाँ उन्हें अविवाहित ही कहती है, इसी लिए तुम अविवाहिता हो।

राजीमती— दुनियाँ कुछ भी कहे। लौकिक रीति रिवाज भले ही मुझे विवाहिता न मानते हों किन्तु मेरा हृदय तो मानता है। मेरी अन्तरात्मा मुझे विवाहिता कह रही है। सामाजिक सुखों के प्रलोभन में पड़ कर अन्तरात्मा की उपेक्षा करना उचित नहीं है। मेरा न्याय मेरी अन्तरात्मा करती है, दुनियाँ की बातें नहीं।

माता— कुमार अरिष्टनेमि तोरण द्वार से लौट गए। उन्होंने तुम्हें अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं किया। फिर तुम अपने को उनकी पत्नी कैसे मानती हो ?

राजीमती— मेरा निर्णय भगवान् अरिष्टनेमि के निर्णय पर प्रभावित नहीं है। उन्होंने अपना निर्णय अपनी इच्छानुसार किया है। मैं चाहें मुझे अपनी पत्नी समझें या न समझें किन्तु उन्हें एक बार अपना पति मान चुकी हूँ। मेरे हृदय में अब दूसरे

उनका अनुसरण करना चाहिए। इस निश्चय पर पहुँचने से उसका मुख पर प्रसन्नता छा गई। उसके हृदय का सारा रोद मिट गया। राजीमती की माता उस समय फिर समझाने आई। राजीमती के दीक्षा लेने के निश्चय को जान कर उसने कहा—बेटी ! सयम को पालना सरल नहीं है। बड़े बड़े योद्धा भी इस के पालन करने में ममर्थ नहीं होते। सरदी और गरमी में नगे पाँव घूमना, भिक्षा में रूखा सूखा जैसा आहार मिल जाय उसी पर सन्तोष करना, भयङ्कर कष्ट पड़ने पर भी मन में क्रोध या ग्लानि न आने देना, शत्रु और मित्र सभी पर समभाव रखना, मानसिक विचारों पर विजय प्राप्त करना सरल नहीं है। तुम्हारे सरीखी महलों में पली हुई कन्या उन्हें नहीं पाल सकती। बेटी ! तुम्हें अपना निर्णय समझ कर करना चाहिए।

राजीमती ने उत्तर दिया—माताजी ! मैं अच्छी तरह सोच चुकी हूँ। सयमी जीवन के कष्टों का भी मुझे पूरा ज्ञान है किन्तु पति के मार्ग पर चलने में मुझे सुख ही मालूम पड़ता है। उनके बिना इस अवस्था में मुझे दुःख ही दुःख है। मेरे लिए केवल सयम ही सुख का मार्ग है, इस लिए आप दूसरी बातों को छोड़ कर मुझे दीक्षा अंगीकार करने की अनुमति दीजिए।

राजीमती की माता को विश्वास हो गया कि राजीमती अपने निश्चय पर अटल है। उसने सारी बातें महाराज उग्रसेन को कहीं। अन्त में यही निर्णय किया कि राजीमती को उसकी इच्छानुसार चलने देना चाहिए। उसके मार्ग में बाधा डाल कर उसकी आत्मा को दुखी न करना चाहिए।

राजीमती ने अपने उपदेश से बहुत सी स्त्रियों तथा दूसरी महिलाओं में भी वैराग्य भावना भर दी। सात सौ स्त्रियाँ उसके साथ दीक्षा लेने की तैयार हो गईं।

कर वह विश्वप्रेम में बदल जाता है। इसके विपरीत जिस प्रेम में स्वार्थ या वासना है वह उत्तरोत्तर संकुचित होता जाता है और अन्त में स्वार्थ या वासना की पूर्ति न होते देख समाप्त हो जाता है। इस का अमली नाम मोह है। मोह ग्रन्थकारमय है और प्रेम प्रकाशमय। मोह का परिणाम दुःख और अज्ञान है, प्रेम का सुख और ज्ञान।

राजीमती के हृदय में शुद्ध प्रेम था। इस लिए भगवान् की आत्मा के साथ वह भी अपनी आत्मा को ऊँची उठाने का प्रयत्न कर रही थी। भगवान् के समान अपने प्रेम को बढ़ाते हुए विश्वप्रेम में बदल रही थी।

धीरे धीरे एक वर्ष पूरा हो गया। भगवान् अरिष्टनेमि का वार्षिकदान समाप्त हुआ। इन्द्र आदि देव दीक्षा महोत्सव मनाने के लिए आए। श्रीकृष्ण तथा दूसरे यादवों ने भी खूब तैयारियाँ कीं। अन्त में श्रावण शुक्ला पष्टी को भगवान् अरिष्टनेमि ने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। जो दिन एक साल पहले उनके विवाह का था, वही आज मंसिर के सभी सम्बन्धों को छोड़ने का दिन बन गया। नेमिकुमार ने राजवंश को छोड़ कर वन का रास्ता लिया। उनके साथ रश्मिनेमि तथा दुर्मेर यादव कुमार भी दीक्षित हो गए।

भगवान् अरिष्टनेमि की दीक्षा को समाचार राजीमती को भी मालूम पड़ा। समाचार सुन कर वह विचार में पड़ गई कि अब मुझे क्या करना चाहिए। इस प्रकार विचार करते करते उसे जातिस्मरण हा गया। उसे मालूम पड़ा कि मेरा और भगवान् का सम्बन्ध पिछले आठ वर्षों से चला आ रहा है। इस नवें वर्ष भगवान् का संयम अङ्गीकार करने का निश्चय पहले से था। प्रतिबोध देने की इच्छा से ही उन्होंने विवाह का आयोजन कर लिया था। अब मुझे भी शीघ्र संयम अङ्गीकार करके

उनका अनुसरण करना चाहिए। इस निश्चय पर पहुँचने से उसक मुख पर प्रसन्नता छा गई। उसके हृदय का सारा खेद मिट गया। राजीमती की माता उस समय फिर समझाने आई। राजीमती के दीक्षा लेने के निश्चय को जान कर उमन कहा—बेटी ! संयम को पालना सरल नहीं है। बड़े बड़े योद्धा भी इस के पालन करने में समर्थ नहीं होते। मरदी और गरमी में नंगे पाँव घूमना, भिक्षा में रूखा सूखा जैमा आहार मिल जाय उसी पर सन्तोष करना, भयङ्कर कष्ट पढ़ने पर भी मन में क्रोध या ग्लानि न आने देना, शत्रु और मित्र सभी पर समभाव रखना, मानसिक विचारों पर विजय प्राप्त करना सरल नहीं है। तुम्हारे सरीखी महलों में पली हुई कन्या उन्हें नहीं पाल सकती। बेटी ! तुम्हें अपना निर्णय समझ कर करना चाहिए।

राजीमती ने उत्तर दिया—माताजी ! मैं अच्छी तरह सोच चुकी हूँ। संयमी जीवन के कष्टों का भी मुझे पूरा ज्ञान है किन्तु पति के मार्ग पर चलने में मुझे सुख ही मालूम पड़ता है। उनके बिना इस अवस्था में मुझे दुःख ही दुःख है। मेरे लिए केवल संयम ही सुख का मार्ग है, इस लिए आप दूसरी बातों को छोड़ कर मुझे दीक्षा अंगीकार करने की अनुमति दीजिए।

राजीमती की माता को विश्वास हो गया कि राजीमती अपने निश्चय पर अटल है। उसने सारी बातें महाराज उग्रसेन को कही। अन्त में यही निर्णय किया कि राजीमती को उसकी इच्छानुसार चलने देना चाहिए। उसके मार्ग में बाधा डाल कर उसकी प्रात्मा को दुखी न करना चाहिए।

राजीमती ने अपने उपदेश से बहुत सी सखियों तथा दूसरी महिलाओं में भी वैराग्य दी। सात सौ ^ ^ ^ साथ दीक्षा लेने को

भगवान् अरिष्टनेमि को ने पलजान होते ही राजीमती ने मात साँ
सगियों के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली । महाराज उग्रसेन तथा
श्रीकृष्ण ने उमका निष्क्रमण (दीक्षा या ससार त्याग) महोत्सव
मनाया । राजकुमारी राजीमती साध्वी राजीमती बन गई । श्रीकृष्ण
तथा सभी यादवों ने उसे वन्दना की । अपनी शिष्याओं सहित
राजीमती तप समय की आराधना तथा जनकल्याण करती हुई
विचरने लगी । थोड़े ही समय में वह प्रह्व्युत हो गई ।

राजीमती के हृदय में भगवान् अरिष्टनेमि के दर्शन करने की
पहले से ही प्रबल उत्कण्ठा थी । दीक्षा लेने के पश्चात् वह आँ
गठ गई । उन दिनों भगवान् गिरिनार पर्वत पर विराजते थे । महा
मती राजीमती अपनी शिष्याओं के साथ विहार करती हुई गिरि
नार के पाम आ पहुँची और उल्लाम पूर्वक ऊपर चढ़ने लगी ।
मार्ग में जोर से आँधी चलने लगी, साथ में पानी भी गरम
लगा । काली घटाओं के कारण अन्धेरा छा गया । पाम सखे
मृत् भी दिखाई देने पड़ हो गए । साध्वी राजीमती उस नर
एडर में पड़ कर अकेली रह गई । सभी साध्वियों का साथ
छूट गया । वर्षा के कारण उमका कपड़े भीग गए ।

धीरे धीरे आँधी का जोर कम हुआ । वर्षा थम गई । राजी
मती को एक गुफा दिखाई दी । कपड़े सुखाने के विचार से वह
उसी में चली गई । गुफा को निर्जन समझ कर उमने कपड़े उतारे
और सुखाने के लिए फैला दिए ।

उसी गुफा में रथनेमि धर्मचिन्तन कर रहे थे । अंधेरा होने के
कारण वे राजीमती को दिखाई नहीं दिए । रथनेमि की दृष्टि राजी-
मती के नग्न शरीर पर पड़ी । उनके हृदय में कामवामना जागृत हो
गई । एकान्त स्थान, वर्षा का समय, सामने वस्त्र रहित सुन्दरी, ऐसी
अवस्था में रथनेमि अपने को न समझाल सके । अपने अभिप्राय

१ प्रकट करने के लिए वे विविध प्रकार से कुचेष्टाए करने लगे । 'राजीमती को पना चल' गया कि गुफा में कोई पुरुष है और वह री चेष्टाए कर रहा है । यह डर गई कि कहीं यह पुरुष बल योग न करे । ऐसे समय में शील की रक्षा का प्रश्न उसके सामने दृढ़ पिम्पट था । थोड़ी सी देर में उसने अपने कर्तव्य का निश्चय र लिया । उसने सोचा— मैं वीरमाला हूँ । हँसने हुए प्राणों पर लि सकती हूँ । फिर मुझे क्या डर है ? मनुष्य तो क्या देव भी र शील का भग नहीं कर सकते । वस्त्र पहिनने में मिलम्ब करना चित न समझ कर वह मर्कटासन लगा कर बैठ गई । जिससे मातुर व्यक्ति उस पर शीघ्र हमला न कर सके ।

अंधेरे के कारण रथनेमि राजीमती को दिखाई न दे रहे थे । जीमती कुछ प्रकाश में थी इस कारण रथनेमि को स्पष्ट दिखाई रही थी । उन्होंने राजीमती को पहिचान लिया और चेहरे की बमझी से जान लिया कि राजीमती भयभीत हो गई है । वे अपने न से उठ कर राजीमती के पास आए और कहने लगे— राजी- १ । डरो मत । मैं तुम्हारा प्रेमी रथनेमि हूँ । मेरे द्वारा तुम्हें किसी र का नष्ट न होगा । भय और लज्जा को छोड़ दो । आओ हम तुम प्योचित सुख भोगें । यह स्थान एकान्त है, कोई देखने वाला नहीं दुर्लभ नरजन्म को पाकर भी सुखों में उश्चित रहना मूर्खता है । रथनेमि के शब्द सुन कर राजीमती का भय कुछ कम हो गया । ने मोचा— रथनेमि कुलीन पुरुष हैं इस लिए समझाने पर । जाएंगे । उसने मर्कटासन त्याग कर कपड़े पहिनना शुरू र । रथनेमि कामुक बन कर राजीमती से विविध प्रकार की नाए कर रहे थे और राजीमती कपड़े पहिन रही थी । कपड़े न लेने पर उसने कहा— रथनेमि अनगार । आपने मुनिव्रत हीकार किया है । फिर आप कामुक तथा पतित लोगों के समान

कैसी बातें कर रहे हैं ?

रथनेमि— माधु होने पर भी हम समय मुझे तुम्हारे मिवाय कुछ नहीं सूझ रहा है । तुम्हारे रूप पर आसक्त होकर मैं सात ज्ञान, ध्यान भूल गया हूँ ।

राजीमती—आपको अपनी प्रतिज्ञाओं पर दृढ़ रहना चाहिए । क्या आप भूल गए कि आपने मंथम अङ्गीकार करते समय क्या प्रतिज्ञाएं की थीं ?

रथनेमि— मुझे वे प्रतिज्ञाएं याद हैं, किन्तु यहाँ कौन देख रहा है !

राजीमती— जिसे दूसरा कोई न देखे क्या वह पाप नहीं होता ? अपनी अन्तरात्मा से पूछिए । क्या छिप कर पाप करने वाला पतित नहीं माना जाता ?

मायावी होने के कारण वह तो सुलभमसुल्ला पाप करने वाले में भी अधिक पातकी है ।

रथनेमि— अगर छिप कर ऐसा करना तुम्हें पसन्द नहीं है तो आओ हम दोनों विवाह कर लें और संसार का आनन्द उठाएं । वृद्धावस्था आने पर फिर दीक्षा ले लेंगे ।

राजीमती— आपने उस समय स्वयं लाए हुए पेय पदार्थ को क्यों नहीं पिया था ?

रथनेमि— वह तुम्हारा वमन किया हुआ था ।

राजीमती— यदि आप ही का वमन होता तो आप पी जाते ।

रथनेमि—यह कैसे हो सकता है, क्या वमन को भी कोई पीता है ?

राजीमती— तो आप कामभोगों को छोड़ कर (उनका वमन करके) फिर स्वीकार करने के लिये कैसे तैयार हो रहे हैं ?

रथनेमि कुमार ! आप अन्धकवृष्णि के पुत्र, महाराजा समुद्र विजय के पुत्र, धर्मचक्रवती तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमि के भाई हैं । न्याये हुए को फिर स्वीकार करने की इच्छा आपके लिये लज्जा

की बात है ।

पक्ष्मन्टे जलिय जोइ, धर्मकेउ दुरासय ।

नेच्छन्ति वतयं भोचु, कुले जाया अगधणे ॥

अर्थात्—अगन्धन कुल में पैदा हुए माँप जाज्वल्यमान प्रचण्ड अग्नि में गिर कर भस्म हो जाते हैं किन्तु उगले हुए विष को पीना पसन्द नहीं करते ।

आप तो मनुष्य हैं, महापुरुषों के कुल में आपका जन्म हुआ है फिर यह दुर्भावना कहाँ से आई ?

आपने समार छोड़ा है । मैंने भी विषयवासना छोड़ कर महाव्रत अङ्गीकार किये हैं । आप और भगवान् दोनों एक कुल के हैं । दोनों ने एक ही माता के पेट में जन्म लिया है फिर भी आप दोनों में कितना अन्तर है । जरा अपनी आत्मा की तरफ ध्यान दीजिए । चर्मचक्षुओं के बजाय आभ्यन्तर नेत्रों में देखिए । जो शरीर आपको सुन्दर दिखाई दे रहा है, उसके अन्दर रुधिर, माँस, चर्बी, विष्टा आदि अशुचि पदार्थ भरे हुए हैं । क्या ऐसी अपवित्र वस्तु पर भी आप आसक्त हो रहे हैं ? यदि आप मरीखे मुनिवर भी इस प्रकार डाँवा-ढोल होने लगेंगे तो दूसरों का क्या हाल होगा ? जरा विचार कर देखिए कि आपके मुख में क्या ऐसी बात शोभा देती है ? अपने कृत्य पर पश्चात्ताप कीजिए । भविष्य के लिए मयम में दृढ़ रहने का निश्चय कीजिए । तभी आपकी आत्मा का कल्याण हो सकेगा ।

रथनेमि का मन्त्रक राजीमती के सामने लज्जा में झुक गया । उन्हें अपने कृत्य पर पश्चात्ताप होने लगा । अपने अपराध के लिए वे राजीमती से बार बार क्षमा माँगने लगे ।

राजीमती ने कहा—रथनेमि मुनिवर ! क्षमा अपनी आत्मा से माँगिए । पाप करने वाला व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को इतना लुक्मान नहीं पहुँचाता जितना अपनी आत्मा को पतित बनाता है । इस लिए

अधिक हानि आपकी ही हुई है। उसके लिए पश्चात्ताप करके आत्मा को शुद्ध बनाइए। पश्चात्ताप की आग में पाप कर्म भस्म हो जाते हैं। भविष्य के लिए पाप से बचने की प्रतिज्ञा कीजिए। अपने मन को शुभध्यान में लगाए रखिए जिससे आत्मा का उत्तरोत्तर विकास होता जाय।

तीसे सो वयणं सुच्चा, सजईए सुभासियं ।

अंकुसेण जहा नागो धम्मे संपडिवाहओ ॥

अर्थात्— जिस प्रकार अंकुश द्वारा हाथी ठिकाने पर आ जाता है उसी प्रकार सती राजीमती द्वारा कहे हुए हित वचनों को सुन कर रथनेमि धर्म में स्थिर हो गये।

रथनेमि ने भविष्य के लिए संयम में दृढ़ रहने की प्रतिज्ञा की। राजीमती ने उसे संयम के लिए फिर प्रोत्साहित किया और गुफा से निकल कर अपना रास्ता लिया। आगे चल कर उसे दूसरी साधवियों भी मिल गईं। सब के साथ वह पहाड़ पर चढ़ने लगी।

धीरे धीरे सभी साधवियों भगवान् अरिष्टनेमि के पास जा पहुँचीं। राजीमती की चिर अभिलाषा पूर्ण हुई। आनन्द से उस का हृदय गद्गद हो उठा। उसने भगवान् के दर्शन किए। उपदेश सुना। आत्मा को सफल बनाया। भगवान् के उपदेशानुसार कठोर तप और संयम की आराधना करने लगी। फल स्वरूप उसके सभी कर्म शीघ्र नष्ट हो गए। भगवान् के मोक्ष पधारने से चौपन दिन पहले वह सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गई।

वामना रहित सच्चा प्रेम, पूर्ण ब्रह्मचर्य, कठोर संयम, उग्र तपस्या, अनुयम पतिभक्ति तथा गिरते हुए को स्थिर करने के लिए राजीमती का आदर्श सदा जाज्वल्यमान रहेगा।

(पूज्य श्रीजवाहरलालजी महाराज के व्याख्यान में आये हुए राजीमती चरित्र के आधार पर)

(५) द्रौपदी

प्राचीन काल में चम्पा नाम की नगरी थी। उसके बाहर उत्तर पूर्व दिशा अर्थात् ईशान कोण में सुभूमिभाग नाम का उद्यान था। चम्पा नगरी में तीन ब्राह्मण रहते थे— सोम, सोमदत्त और सोमभृति। वे तीनों भाई भाई थे। तीनों धनाढ्य, वेदों के जानकार तथा शास्त्रों में प्रवीण थे। तीनों के क्रमशः नागश्री, भूतश्री और यक्षश्री नाम वाली तीन भार्याएँ थीं। तीनों सुशोभल तथा उन ब्राह्मणों को अत्यन्त प्रिय थीं। मनुष्य सम्बन्धी भोगों को यथेष्ट भोगती हुई कालयापन कर रही थीं।

एक बार तीनों भाइयों ने विचार किया— हम लोगों के पास बहुत धन है। मात पीढ़ी तक भी यदि हम बहुत दान करें तथा बहुत बाँटें तब भी समाप्त नहीं होगा, इस लिए प्रत्येक को बारी बारी से विपुल अशन पान आदि तैयार कराने चाहिए और सभी को वहीं एक साथ भोजन करना चाहिए। यह सोच कर वे सब बारी बारी से प्रत्येक के घर भोजन करते हुए आनन्द पूर्वक रहने लगे।

एक बार नागश्री के घर भोजन की बारी आई। उसने विपुल अशन पान आदि तैयार किए। शरद् ऋतु सम्बन्धी अलाबु (तुम्बा या धीया) का तज, इलायची वगैरह कई प्रकार के मसाले डाल कर शाक बनाया। तैयार हो जाने पर नागश्री ने एक बूँद हाथ में लेकर उसे चखा। वह उसे खारा, कड़वा, अस्वाद और अमर्त्य मालूम पड़ा। नागश्री बहुत पश्चात्ताप करने लगी। कड़वे शाक को कोने में रख कर उसने माठे अलाबु (तुम्बा या धीया) का शाक बनाया। सभी ने भोजन किया और अपने अपने कार्य में प्रवृत्त हो गए।

उन दिनों धर्मघोष नाम के स्थविर मुनि अपने शिष्य

सहित विहार करने हुए चम्पानगरी के मुभूमिभाग नामक उद्यान में पधार। उन्हें वन्दना करने के लिए नगरी के बहुत से लोग गए। मुनि ने धर्मोपदेश दिया। व्याख्यान के बाद सभी लोग अपने अपने स्थान पर चले आए।

वर्मघोष स्थविर के शिष्य धर्मरुचि अनगार मास मास खमण की तपस्या करते हुए विचर रहे थे। मासखमण के पारने के दिन धर्मरुचि अनगार ने पहिली पोरिमी में स्वाध्याय किया। दूसरी में ध्यान किया। फिर तीसरी पोरिमी में पात्र जगैरह की पडिलेहणा करके धर्मघोष स्थविर की आज्ञा ली। चम्पा नगरी में आहार के लिए उच्च नीच कुलों में घूमते हुए वे नागश्री के घर पहुँचे। नागश्री उन्हें देख कर खड़ी हुई और रसोई में जाकर वही कढ़वे तुम्हे का शाक उठा लाई। उसे धर्मरुचि अनगार के पात्र में डाल दिया।

पर्याप्त आहार आया जान कर धर्मरुचि अनगार नागश्री ब्राह्मणी के घर में निकल कर उपाश्रय में आए। आहार का पात्र हाथ में लेकर गुरु को बताया। वर्मघोष स्थविर को तुम्हे की गन्ध बुरी लगी। शाक की एक बूँद हाथ में ल कर उन्होंने उसे चखा तो बहुत कड़वा तथा अभक्ष्य मालूम पड़ा। उन्होंने धर्मरुचि अनगार से कहा—हे देवानुप्रिय ! कड़वे तुम्हे के इस शाक का यदि तुम आहार करोगे तो अकालमृत्यु प्राप्त करोगे। इस लिए इस शाक को किमी एकान्त तथा जीव जन्तुओं से रहित स्थण्डिल में परठ आओ। दूसरा एषणीय आहार लाकर पारना करो।

धर्मरुचि अनगार गुरु की आज्ञा से मुभूमिभाग नामक उद्यान से कुछ दूर गये। स्थण्डिल की पडिलेहणा करके उन्होंने शाक की एक बूँद जमीन पर डाली। उस की गन्ध से उभी समय बहों हजारों कीड़ियाँ आ गई और स्वाद लेते ही अकाल मृत्यु प्राप्त करने लगीं। यह देख धर्मरुचि अनगार ने मोचा— एक बूँद से ही इतने जीवों

की हिंसा होती है तो यदि मैं मारा शाक यहाँ परठ दूँगा तो बहुत से प्राण (दीन्द्रियादि), भूत (वनस्पति) जीव (पञ्चेन्द्रिय) तथा मत्त (पृथ्वी कायादिक) मारे जावेंगे। इस लिए यही श्रेयस्कर है कि मैं स्वयं इस शाक का आहार कर लूँ। यह शाक मेरे शरीर में ही गल जायगा। यह मोच कर उन्होंने मुखवस्त्रिका की पड़िलेहणा की। अपने शरीर को पूजा। इसके बाद उस कढ़वे शाक को इस तरह अपने पेट में डाल लिया जिस तरह सोंप घिल में प्रवेश करता है।

आहार करने के बाद एक मुहूर्त के अन्दर अन्दर वह शाक त्रिषरूप में परिणत हो गया। सारे शरीर में असह्य वेदना होने लगी। उनमें बैठने, उठने की शक्ति नष्ट हो गई। वे बलरहित पराक्रमरहित और वीर्यरहित हो गए।

अपने आयुष्य को समाप्तप्राय जान कर धर्मरुचि अनगार ने पात्र अलग रख दिए। स्थण्डिल की पड़िलेहणा करके दर्भ का सधारा बिछाया। उम पर बैठ कर पूर्व की ओर मुँह किया। दोनों हाथों की अञ्जलि को ललाट पर रख कर उन्होंने इस प्रकार बोलना शुरू किया—

शमोत्थुणं अरिहताण जाव मपत्ताण, शमोत्थुणं धम्मघो-
माणं मम धम्मायरियाण धम्मोवएसगारणं, पुब्बिं पि र्णं मम
धम्मघोमाण येराणं अन्ति ए सन्वे पाणातिवा ए पच्चक्खा ए
जावज्जीवा ए जाव परिग्गहे। इयासिं पि र्णं अहं तेसिं च व
भगवताण अतियं सन्वं पाणातिवाय पच्चक्खामि जाव
परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवा ए।।

अर्थात्—अरिहन्त भगवान् और सिद्ध भगवान् को मेरा नमस्कार तथा मेरे धर्माचार्य्य एव धर्मापदेशक धर्मधोष स्थविर को नमस्कार। मैंने आचार्य्य भगवान् के पास पहले सर्व प्राणातिपात से लेकर परिग्रह तक सब पापों का जावज्जीवन त्याग किया था। अब फिर

उन सभी पापों का त्याग करता हूँ ।

इस प्रकार चरम श्वासोच्छ्वास में तब शरीर का ममत्त्व छोड़ कर आलोचना और प्रतिक्रमण करके धर्मरुचि अनगार समाधि में स्थिर हो गये। सारे शरीर में विष व्याप्त हो जाने से प्रबल वेदना उत्पन्न हुई जिसमें तत्काल वे कालधर्म को प्राप्त हो गये ।

धर्मरुचि अनगार को गये हुए जब बहुत समय हो गया तो धर्मघोष आचार्य ने दूमे साधुओं को उनका पता लगाने के लिये भेजा । स्थण्डिल भूमि में जाकर साधुओं ने देखा तो उन्हें मालूम हुआ कि धर्मरुचि अनगार कालधर्म को प्राप्त हो गये हैं । उसी समय साधुओं ने उसके निमित्त कायोत्सर्ग किया । इसके बाद धर्मरुचि अनगार के पात्र आदि लेकर वे धर्मघोष आचार्य के पास आए और उनके सामने पात्र आदि रख कर धर्मरुचि अनगार के काल धर्म प्राप्त होने की बात कही ।

धर्मघोष आचार्य ने पूर्वोक्त ज्ञान में उपयोग दे कर देखा और सब साधुओं को बुला कर इस प्रकार कहा—आर्यों ! मेरा शिष्य धर्मरुचि अनगार प्रकृति का भद्रिक ओर विनयवान् था । निरन्तर एक एक महीने से पारना करता था । आज मामसमण के पारने के लिए वह गोचरी के लिए गया । नागश्री ब्राह्मणी ने उसे कढ़ी तुम्हे का शाक बहरा दिया । उसके खाने से उसका देहान्त हो गया है । परिणामों की शुद्धता में वह सर्वार्थसिद्ध विमान में तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला देव हुआ है ।

यह सुनकर जब शहर में फैली तो लोग नागश्री को धिक्कारने लगे । वे तीनों ब्राह्मण भाई नागश्री के इस कार्य से उस पर बहुत क्रुपित हुए । घर आकर उन्होंने नागश्री को बहुत बुरा भला कहा और निर्भर्त्सना पूर्वक उसे घर से बाहर निकाल दिया । वह जहाँ भी जाती लोग उसका तिरस्कार करते, धिक्कारते और अपने यहाँ

से निकाल देते। नागश्री बहुत दुखी हो गई। हाथ में मिट्टी का पात्र लेकर वह घर घर भीख मांगने लगी। थोड़े दिनों बाद उसके शरीर में श्वास, काम, योनिशूल, कोढ़ आदि सोलह रोग उत्पन्न हुए। मर कर छठी नारकी में गार्डम सागरोपम की स्थिति वाले नारकियों में नैरयिक रूप से उत्पन्न हुई। वहाँ से निकल कर मत्स्य, ७वीं नरक, मत्स्य, ७वीं नरक मत्स्य, छठी नरक, उरग (सर्प), इस प्रकार बीच में तिर्यञ्च का भग्न करती हुई प्रत्येक नरक में दो दो बार उत्पन्न हुई। फिर पृथ्वीकाय, अप्काय आदि एकेन्द्रिय जीवों में तथा द्वीन्द्रियादि जीवों में अनेक बार उत्पन्न हुई। इस प्रकार नरक और तिर्यञ्च के अनेक भग्न करता हुआ नागश्री का जीव चम्पा नगर निवासी सागरदत्त सार्थगाह की भार्या भद्रा की कुक्षि में पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ।

जन्मोत्सव मना कर माता पिता ने पुत्री का नाम सुकुमालिका रखा। माता पिता की इकलौती सन्तान होने से वह उनको बहुत प्रिय थी। पाच धायों द्वारा उसका पालन होने लगा। सुरक्षित बेल की तरह बट बढ़ने लगी। क्रमशः बाल्यावस्था को छोड़ कर वह यौवन वय को प्राप्त हुई। अब माता पिता को उसके योग्य वर खोजने की चिन्ता हुई।

चम्पा नगरी में जिनदत्त नाम का एक सार्थगाह रहता था। उसकी स्त्री का नाम भद्रा और पुत्र का नाम सागर था। सागर बहुत रूपवान् था। विद्या और कला में प्रवीण होकर वह यौवन वय को प्राप्त हुआ। माता पिता उसके लिये योग्य कन्या की खोज करने लगे।

एक दिन जिनदत्त सागरदत्त के घर के नजदीक होकर जा रहा था। अपनी सखियों के साथ कनककन्दुक (सुनहली गेंद) से खेलती हुई सुकुमालिका को उसने देखा। नौकरों द्वारा दरियाफ्त कराने पर उसे मालूम हुआ कि यह सागरदत्त की पुत्री सुकुमालिका है।

इसके पश्चात् एक समय जिनदत्त मागरदत्त के घर गया। उचित मत्कार करने के पश्चात् मागरदत्त ने उमे आने का कारण पूछा। जिनदत्त ने अपने पुत्र मागर के लिये सुकुमालिका की माँगणी की। मागरदत्त ने कहा—हमारे यह एक ही मन्तान हैं। हमें यह बहुत प्रिय है। हम इसका वियोग सहन नहीं कर सकते, इस लिये यदि आपका पुत्र हमारे यहाँ घरजमाई तरीके रहे तो मैं अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर सकता हूँ। जिनदत्त ने मागरदत्त की यह शर्त स्वीकार कर ली। शुभ मुहूर्त्त देख कर मागरदत्त ने अपनी पुत्री सुकुमालिका का विवाह मागर के साथ कर दिया।

मागर को सुकुमालिका के अङ्ग का स्पर्श अमि पत्र (खड्ग) के समान अति तीक्ष्ण और कष्टकारक प्रतीत हुआ। मोती हुई सुकुमालिका को छोड़ कर वह अपने घर भाग आया। पति वियोग से सुकुमालिका उदामीन और चिन्तित रहने लगी।

पिता ने कहा—पुत्री ! यह तेरे पूर्व भव के अशुभ कर्मों का फल है। तू चिन्ता मत कर। अपने रमोईघर में अशन, पान आदि वस्तुएँ हर समय तैयार रहती हैं, उन्हें साधु महात्माओं को बहराती हुई तू धर्म ध्यान कर।

सुकुमालिका पिता के कथनानुसार कार्य करने लगी। एक समय गोपालिका नाम की गृहश्रुत साध्वी अपनी शिष्याओं के साथ वहाँ आई। अशन, पान आदि बहराने के पश्चात् सुकुमालिका ने उनमें पूछा—हे आर्याओ ! तुम बहुत मंत्र तंत्र जानती हो। मुझे भी ऐसा कोई मंत्र बतलाओ जिससे मैं अपने पति को डष्ट हो जाऊँ। साध्वियों ने कहा—हे भट्टे ! इन बातों को बताना तो दूर रहा, हमें ऐसी बातें सुनना भी नहीं कल्पना। साध्वियों ने सुकुमालिका को केवल-भाषित धर्म का उपदेश दिया जिससे उसे ममार से निरक्ति हो गई। अपने पिता मागरदत्त की आज्ञा लेकर उसने गोपालिका आर्या के

पाम दीक्षा ले ली। दीक्षा लेकर अनेक प्रकार की कठोर तपस्या करती हुई पिघरने लगी।

एक समय वह गोपालिका आर्या के पास आकर इस प्रकार कहने लगी—पूज्ये! आपकी आज्ञा हो तो मैं सुभूमिभाग उद्यान के आमपाम घेले में ले पारना करती हुई सूर्य की आतापना लेकर विचरना चाहती हूँ। गोपालिका आर्या ने कहा—माध्वियों को आम यावत् सन्निवेश के बाहर सूर्य की आतापना लेना नहीं कल्पता। अन्य साध्वियों के साथ रह कर उपाश्रय के अन्दर ही अपने शरीर को कपड़े में ढक कर सूर्य की आतापना लेना कल्पता है।

सुकुमालिका ने अपनी गुरुआनी की बात न मानी। वह सुभूमिभाग उद्यान के कुछ दूर आतापना लेने लगी। एक समय देवता नाम की एक वेश्या पाँच पुरुषों के साथ क्रीड़ा करने के लिए सुभूमिभाग उद्यान में आई। उसे देख कर सुकुमालिका के हृदय में बेचार आया कि यह स्त्री भाग्यशालिनी है जिससे यह पाँच पुरुषों को बल्लभ एवं प्रिय है। यदि मेरे त्याग, तप एवं ब्रह्मचर्य का कुछ फल हो तो आगामी भव में मैं भी इसी प्रकार पाँच पुरुषों को प्रेम एवं प्रिय बनूँ। इस प्रकार सुकुमालिका ने नियाना कर लिया। कुछ समय पश्चात् वह गोपालिका आर्या के पास वापिस चली आई। अब वह शरीर बकुशा हो गई अर्थात् शरीर की शुश्रूषा करने गई। अपने शरीर के प्रत्येक भाग को धोने लगी तथा स्वाध्याय, योग के स्थान को भी जल से छिड़कने लगी। गोपालिका आर्या उसे ऐसा करने से मना किया किन्तु सुकुमालिका ने उसकी बात मानी और वह ऐसा ही करती हुई रहने लगी। दूसरी माध्वियों उसका यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा। उन्होंने उसका आदर न करने लगा छोड़ दिया। इससे गोपालिका आर्या को छोड़ कर सुकुमालिका अलग उपाश्रय में अकेली रहने लगी। अब वह पासत्या,

पामत्य विहारी, ओसएणा, ओसएण विहारी, कुसीला, कुमीलविहार
संमत्ता और संसत्त विहारी होगई अर्थात् सयम में शिथिल हो गई।

इस प्रकार कई वर्षों तक साधुपर्याय का पालन कर अन्तिम
समय में पन्द्रह दिन की सलेखना की। अपने योग्य आचरण की
आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही वह कालधर्म का
प्राप्त हो गई। मर कर ईशान देवलोक में नव पल्योपम की
रिथिति वाली देवगणिजा (अपरिगृहीता देवी) हुई।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में पश्चाल देश के अन्दर एक अति रम
णीय कम्पिलपुर नाम का नगर था। उसमें द्रुपद राजा राज्य करता
था। उसकी पटरानी का नाम चुलणी था। उनके पुत्र का नाम
घृष्टद्युम्न था। वह युवराज था। ईशान कल्प का आयुष्य पूरा होने
पर सुकुमालिका का जीम रानी चुलणी की कुक्षि से पुत्री रूप
में उत्पन्न हुआ। माता पिता ने उसका नाम द्रौपदी रखा।

पाँच धार्यों द्वारा लालन पालन की जाती हुई द्रौपदी पर्वत
की गुफा में रही हुई चम्पकलता की तरह बढ़ने लगी। क्रमशः
बाल्यावस्था को छोड़ कर वह युवावस्था को प्राप्त हुई। राजा
द्रुपद को उसके लिये योग्य वर की चिन्ता हुई।

राजा द्रुपद ने द्रौपदी का स्नयन करने का निश्चय किया।
नौकरों को बुला कर उसने स्नयन मण्डप बनाने की आज्ञा
दी। मण्डप तैयार हो जाने पर द्रुपद राजा ने अनेक देशों के
राजाओं के पास दूतों द्वारा आमन्त्रण भेजे।

निश्चित तिथि पर, विविध देशों के अनेक राजा और राजकुमार
स्नयन मण्डप में उपस्थित हुए। कृष्ण वासुदेव भी अनेक यादव
कुमार और पाँच पाण्डवों को साथ लेकर वहाँ आये। सभी लोग
अपने-अपने योग्य आसनों पर बैठ गये। स्नान करके वस्त्राभूषणों
अलंकृत होकर राजकुमारी द्रौपदी एकदासी के साथ स्नयन मण्डप

में आई। दासी नाए हाथ में एक दर्पण लिये हुई थी। उसमें राजाओं का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। उनके नाम, स्थान तथा गुणों का परिचय देती हुई वह द्रौपदी को साथ लेकर आगे बढ़ रही थी। धीरे धीरे वह जहाँ पाँच पाण्डव बैठे हुए थे वहाँ आ पहुँची। पूर्व जन्म में किये हुए नियाये से प्रेरित होकर उसने पाँचों पाण्डवों के गले में नरमाला डाल दी। 'राजकुमारी द्रौपदी ने श्रेष्ठ वरण किया' ऐसा कह कर मन राजाओं ने उनका अनुमोदन किया।

इसके पश्चात् राजा द्रुपद ने अपनी पुत्री का विवाह पाँचों पाण्डवों के साथ कर दिया। आठ करोड़ सोनेयों का प्रीतिदान दिया। विपुल अन्न, पान तथा वस्त्र आभरण आदि से पाण्डवों का उचित सत्कार कर उन्हें विदा किया। (ज्ञाताधर्म अध्याग सोलहवा अध्याय)

द्रौपदी का विवाह पाँचों पाण्डवों के साथ हो गया। बारी बारी में वह प्रत्येक की पत्नी रहने लगी। जिस दिन जिसकी बारी होती उस दिन उसे पति मान कर चाक्री के साथ जेठ या देवर सरीखा तर्पण करती।

एक बार द्रौपदी शरीर परिमाण दर्पण में अपने शरीर को नारदार देख रही थी। इतने में वहाँ नारद ऋषि आए। द्रौपदी दर्पण देखने में लीन थी, इस लिए उसने नारदजी को नहीं देखा। नारद कृपित होकर धातकीखण्ड द्वीप की अमरकंका नगरी में पहुँचे। वहाँ पद्मोत्तर राजा राज्य करता था। नारदजी उसी के पास गए।

राजाने विनय पूर्वक उनका स्वागत किया और पूछा—महाराज! आप सब जगह घूमते रहते हैं कोई नई बात बताइए। नारदजी ने उत्तर दिया— मैं हस्तिनापुर गया था वहाँ पाण्डवों के अन्तःपुर में द्रौपदी को देखा। तुम्हारे अन्तःपुर में ऐसी एक भी स्त्री नहीं है। पद्मोत्तर राजा ने द्रौपदी को प्राप्त करने के लिए एक देव की आराधना की। देव द्रौपदी को उठा कर वहाँ ले आया।

पद्मोत्तर उममें रुहने लगा—द्रौपदी ! तुम मेरे साथ भोग भोगो । यह राज्य तुम्हारा है । यह मारा मैंभूव तुम्हारा है । इसे स्वीकार करो । मैं तुम्हें सभी रानियों में पटगनी मानूँगा । सभी काम तुम्हें पूछ कर रूँगा । इस प्रकार कई उपायों से उमने द्रौपदी को सतीत्व से विचलित करने का प्रयत्न किया किन्तु द्रौपदी के हृदय में लेशमात्र भी विकार नहीं आया । वह पंच परमेष्ठी का ध्यान करती हुई तपस्या में लीन रहने लगी ।

द्रौपदी का हरण हुआ जान कर पाण्डवों ने श्रीकृष्ण के पास जाकर मारा हाल कहा । यह सुन कर श्रीकृष्ण भी विचार में पड़ गए ।

द्रौपदी का पता लगाने के लिए वे उपाय सोचने लगे । इतन में नारद ऋषि वहाँ आ पहुँचे । श्रीकृष्ण ने उनसे पूछा—नारदजी ! आपने कहीं द्रौपदी को देखा है ? नारद ने उत्तर दिया—धातकी-खण्ड द्वीप में अमरकंका नगरी के राजा पद्मोत्तर के अन्तःपुर में मैंने द्रौपदी जैसी स्त्री देखी है । यह सुन कर श्रीकृष्ण ने सुस्थित देव की आराधना की । पाँच पाण्डव और श्रीकृष्ण छहों रथ में बैठ कर अमरकंका पहुँचे और नगरी के बाहर उद्यान में ठहर गए । पाँचो पाण्डव पद्मोत्तर राजा के साथ युद्ध करने गए किन्तु हार कर वापिस चले आए । यह देख कर श्रीकृष्ण स्वयं युद्ध करने के लिये गए । राजा पद्मोत्तर हार कर किले में घुम गया । श्री कृष्ण ने किले पर चढ़ कर विकराल रूप धारण कर लिया और पृथ्वी को इस तरह कंपाया कि बहुत से घर गिर पड़े । पद्मोत्तर डर कर श्रीकृष्ण के पैरों में आ गिरा और अपने अपराध के लिए क्षमा माँगने लगा । श्रीकृष्ण द्रौपदी को लेकर वापिस चले आए । उसी समय धातकीखण्ड के मुनिसुव्रत नाम के तीर्थङ्कर धर्मदेशना दे रहे थे । वहाँ रुपिल नाम के वासुदेव ने उनसे श्रीकृष्ण के आगमन की बात सुनी । वह उनसे मिलने के लिए समुद्र के किनारे गया ।

श्रीकृष्ण पहले ही रयाना हो चुके थे। समुद्र में जाते हुए श्री कृष्ण के रथ की ध्वजा को देख कर धातकीसण्ड के वासुदेव कपिल ने उनसे मिलने के लिए अपना शस्त्र बजाया। श्रीकृष्ण ने भी उमका उत्तर देने के लिए अपना शस्त्र बजाया। दोनों वासुदेवों की शस्त्रों में रातचीत हुई।

पाँचों पाण्डव तथा श्रीकृष्ण द्रौपदी के साथ लवण समुद्र को पार करके गंगा के किनारे आए और वहाँ से अपनी राजधानी में पहुँच गए।

एक बार पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ किया। देश विदेश के सभी राजाओं को निमन्त्रण भेजा गया। इन्द्रप्रस्थपुरी को खूब सजाया गया। वह साक्षात् इन्द्रपुरी सी मालूम पड़ने लगी। मयदानव ने सभा मण्डप रचने में अपूर्व कौशल दिखलाया। जहाँ स्थल था वहाँ पानी दिखाई देता था और जहाँ पानी था वहाँ सूखी जमीन दिखाई देती थी। देश विदेश के राजा इकट्ठे हुए युधिष्ठिर के चरणों में गिरे। दुर्योधन वगैरह सभी क्रौरव भी आए।

एक बार द्रौपदी और भीम बैठे हुए मभामण्डप को देख रहे थे। इतने में वहाँ दुर्योधन आया। सूखी जमीन में पानी समझ कर उसने कपड़े ऊँचे उठा लिये। पानी वाली जगह को सूखी जमीन समझ कर वैसे ही चला गया और उसके कपड़े भीग गए। द्रौपदी और भीम यह सब देख रहे थे, इस लिए हँसने लगे। द्रौपदी ने मजाक करते हुए कहा—अन्धे के बेटे भी अन्धे ही होते हैं।

दुर्योधन के दिल में यह बात तीर की तरह चुभ गई। उसने मन ही मन इस अपमान का बदला लेने के लिए निश्चय कर लिया।

दुर्योधन का मामा शकुनि पंडित रचने में बहुत चतुर था। जुए में सिद्धहस्त था। उमका फँका हुआ पासा कभी उल्टा न पड़ता था। दुर्योधन ने उमी से कोई उपाय पूछा।

शकुनि ने उत्तर दिया—एक ही उपाय है। तुम युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिए तैयार करो। इसके लिए उनके पास विदुरजी को भेज दो। उनके कहने से वे मान जाएंगे। धृतराष्ट्र से तुम स्वयं पूछ लो। खेलते समय यह शर्त रखो कि जो हारे वह राजगद्दी छोड़ दे। तुम्हारी तरफ से पासे मैं फेंकूंगा। फिर देखना, एक भी दाव उल्टा न पड़ेगा।

दुर्योधन ने उसी प्रकार किया। अपने पिता धृतराष्ट्र के पैरों में गिर कर तथा उल्टी मीठी बातें करके, मना लिया। पुत्र-स्नेह के कारण वे उसकी बात को बुरी होने पर भी न टाल सके। विदुर के कहने पर युधिष्ठिर भी तैयार हो गए। जुआ खेला गया। एक तरफ दुर्योधन, शकुनि और सभी कौरव थे, दूसरी ओर पाण्डव। शकुनि के पास प्रिल्कुल ठीक पड रहे थे। युधिष्ठिर अपने राज्य को हार गए। चारों भाई तथा अपने को हार गए। अन्त में द्रौपदी को भी हार गए। जुए में पड कर वे अपनी राज-लक्ष्मी, अपने और भाइयों के शरीर तथा अपनी रानी द्रौपदी सभी को खो बैठे। वे सभी दुर्योधन के दाम बन चुके थे।

महाराजा दुर्योधन का दरबार लगा हुआ था। भीष्म, द्रोणाचार्य विदुर आदि सभी अपने अपने आसन पर शोभित थे। एक तरफ पाचों पाण्डव अपना सिर झुकाए बैठे थे। इतने में ही को चोटी से पकड़ कर लाया। दरवाजे पर भी हिचकिचाई तो दुःशासन ने एक धप जमाया। में द्रौपदी को खींच लिया।

कोय भभक उठा। मिहिनी के समान गर्जते हुए पितामह भीष्म ! आचार्य द्रोण ! विदुरजी ! क्या समय शान्त बैठे रहना ही अपना कर्तव्य समझते हैं ?

ना की पुत्री, पाण्डवों की धर्मपत्नी तथा धृतराष्ट्र की

उधू को पापी दुःशामन इस प्रकार अपमानित करें और आप बैठे बैठे देखते रहें, क्या यही न्याय है ? क्या आप एक अमला के सन्मान की रक्षा नहीं कर सकते ?

‘देखी ऐसी कुलवधू ! पाँच पति फिर भी कुलवधू । तुम्हारे पति जुए में हार गए हैं । वे हमारे दाम बन चुके हैं । साथ में तुम भी’ दुःशासन ने डाटते हुए कहा ।

‘जम जम, मैं कभी गुलाम नहीं हो सकती । मैं सभा से पूछती हूँ कि मेरे पतियों ने मुझे स्वयं दाम होने से पहले दाम पर रक्खा था या बाद में ? अगर पहले रखा हो तभी मैं गुलाम बन सकती हूँ, बाद में रखने पर नहीं ।’ द्रौपदी ने कहा ।

सभी लोग शान्त बैठे रहे । उच्चर कौन दे ? वह सभा न्याय करने के लिये नहीं जुड़ी थी किन्तु पाण्डवों का विनाश करने के लिए । वहाँ न्याय को सुनने वाला कोई न था । यद्यपि भीष्म, द्रोणाचार्य वगैरह स्वयं पापी न थे किन्तु पापी मालिक की नौकरी के कारण उनका हृदय भी कमनोर बन गया था । इस लिए वे दुःशामन का विरोध न कर सके ।

सभी को शान्त देख कर दुःशासन, द्रौपदी और पाण्डवों को लक्ष्य कर कहने लगा—हम कुछ भी नहीं सुनना चाहते । तुम सभी राजसी पोशाक उतार दो । तुम छहो हमारे गुलाम हो ।

पाँचों पाण्डवों ने राजसी पोशाक उतार दी किन्तु द्रौपदी चुपचाप वैसी ही खड़ी रही ।

‘क्यों तुम नहीं सुन रही हो ?’ दुःशामन ने चिल्ला कर कहा ।

‘मैंने एक ही कपड़ा पहिन रखा है, मैं रजस्वला हूँ ।’ द्रौपदी ने उत्तर दिया ।

‘अब रजस्वला बन गई’ कह कर दुःशामन ने उसका पल्ला पकड़ लिया । भीष्म अपने क्रोध को न रोक सका । उसने देखा

अपनी गदा भूमि पर फटकारी । युधिष्ठिर ने उमे मना कर दिया क्योंकि वे दाम थे ।

यह देख कर दुर्योधन बोला— देख क्या रहे हो ? खींच डालो ।

द्रौपदी प्रभु का स्मरण कर रही थी । मानवसमाज में उस समय उमे कोई ऐसा व्यक्ति नजर नहीं आ रहा था जो एक अबला की लाज बचा सके । भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर आदि बड़े बड़े धर्मात्मा और नीतिज्ञ उस समय गुलामी के बन्धन में जकड़े हुए थे । वे दुर्योधन के वेतनभोगी दास थे, इस लिए उसका विरोध न कर सकते थे । मानवसमाज जो नियम अपने कल्याण के लिए बनाता है, वे ही समय पड़ने पर अन्याय के पोषक बन जाते हैं ।

ऐसे समय में द्रौपदी को भगवान् के नाम के सिवाय और कोई रक्षक दिखाई नहीं दे रहा था । वह अपनी लज्जा बचाने के लिए प्रभु से प्रार्थना कर रही थी । दुःशासन उसके चीर को बलपूर्वक खींच रहा था ।

आत्मा में अनन्त शक्ति है, उसके सामने बाह्य शक्ति को कोई अस्तित्व नहीं है । जब तक मनुष्य बाह्य शक्ति पर भरोसा रखता है, बाह्य शस्त्रास्त्र तथा सेनाबल को रक्षा या विध्वंस का उपाय मानता है, तब तक आत्मशक्ति का प्रादुर्भाव नहीं होता । द्रौपदी ने भी बाह्य शक्ति पर विश्वास करके जब तक रक्षा के लिए दूसरों की ओर देखा उमे कोई सहायता न मिली । भीम की गदा और अर्जुन के बाण भी काम न आए । अन्त में द्रौपदी ने बाह्य शक्ति से निराश होकर आत्मशक्ति की शरण ली । वह सब कुछ छोड़ कर प्रभु के ध्यान में लग गई ।

दुःशासन ने अपनी सारी शक्ति लगा दी किन्तु वह द्रौपदी चीर न खींच सका । उमे ऐसा मालूम पड़ने लगा जैसे द्रौपदी महान शक्ति कार्य कर रही हो । वह भयभीत भावों से

खड़ा रह गया। दुर्योधन के पृथ्वी पर उसने कहा—

माई! मुझे से यह वस्त्र नहीं खींचा जा रहा है। अधिक जोर से खींचता हूँ तो ऐसा मालूम पड़ता है जैसे कोई मेरा हाथ पकड़ कर खींच रहा है। इसके मुँह पर देखता हूँ तो आँखों के सामने अंधेरा छा जाता है। पता नहीं इसमें इतना जल कहाँ से आगया। मेरे हाथ काम नहीं कर रहे हैं। अब तो तुम आओ।

सारी सभा स्तब्ध रह गई। दुर्योधन ने अपनी जाघ उधाड़ी और कहा द्रौपदी! आओ यहाँ बैठो।

सभी का मस्तक लज्जा से नीचे झुक गया। भीष्म और द्रोण कुछ न बोल सके। भीष्म से यह दृश्य न देखा गया। उसने खड़े हो कर प्रतिज्ञा की— दुःशासन! दुर्योधन! यह दृश्य मेरी आँखें नहीं देख सकती। अभी तो हम लाचार हैं, प्रतिज्ञाभङ्ग होने के कारण कुछ नहीं कर सकते किन्तु युद्ध में अगर मैं दुःशासन के रक्ते से द्रौपदी के इन केशों को न मीचूँ तथा दुर्योधन की इस जाघ को चूर चूर न करूँ तो मेरा नाम भीष्म नहीं है।

सारी सभा में भय छा गया। भीष्म के बल से सभी कौरव परिचित थे। उसकी प्रतिज्ञा भयङ्कर थी। इतने में धृतराष्ट्र और गान्धारी वहाँ आए। धृतराष्ट्र युधिष्ठिर आदि पाण्डवों के पिता पाण्डु के बड़े भाई थे। वे जन्मान्ध थे, इस लिए गद्दी पाण्डु को मिली। धृतराष्ट्र को अपनी सन्तान पर प्रेम था। वे चाहते थे कि गद्दी उनके ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन को मिले, किन्तु लोकाज से डरते थे। सभा में आते ही उन्होंने द्रौपदी को अपने पास बुला कर सान्त्वना दी। दुःशासन और दुर्योधन को उलहना दिया। अपने पुत्र द्वारा दिए गए इस कष्ट के लिए द्रौपदी से कुछ मागने को कहा।

द्रौपदी बोली— मुझे और कुछ नहीं चाहिए मैं तो सिर्फ पाँचों पाण्डवों की मुक्ति चाहती हूँ।

‘तथास्तु’ कह कर श्रुतराष्ट्र ने सभी पाण्डवों को दामपत्य में मुक्त कर दिया ।

दुर्योधन से यह न देखा गया । उसने दुनारा जुआ खेलन के लिए युधिष्ठिर को आमन्त्रित किया । हारा हुआ जुआरी दुगुना खेलता है इसी लोकोक्ति के अनुसार युधिष्ठिर फिर तैयार होगए ।

इस बार यह शर्त रखी गई कि जो हारे वह बारह वर्ष वन में रहे और एक वर्ष गुप्तवास करे । यदि गुप्तवास में उसका पता लग जाय तो फिर बारह वर्ष वन में रहे ।

भविष्य में होने वाली घटना के लिए कारणसामग्री पहले से तैयार होजाती है । महाभारत के महायुद्ध में जो भीषण नरसंहार होने वाला था, उसकी भूमिका पहले से तैयार हो रही थी । शकुनि के पामे सीधे पड़े । युधिष्ठिर हार गए । उन्हें बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का गुप्तवास प्राप्त हुआ । द्रौपदी और पाँचों पाण्डवों ने वन की ओर प्रस्थान किया । वे भोंपड़ी बना कर घोर जंगल में रहने लगे ।

एक दिन की बात है । युधिष्ठिर अपनी भोंपड़ी में बैठे थे । बाकी चारों भाई जंगल में फल फूल लाने गए हुए थे । पास ही द्रौपदी बैठी थी । बातचीत के सिलसिले में युधिष्ठिर ने लम्बी साँस छोड़ी । द्रौपदी ने आग्रहपूर्वक निःस्वाम का कारण पूछा । बहुत आग्रह होने पर युधिष्ठिर ने कहा—द्रौपदी ! मुझे स्वयं कोई दुःख नहीं है । दुःख तो मुझे तुम्हें देख कर हो रहा है । तुम्हारे सरीखी कोमल राजकुमारी महलों को छोड़ कर वन में भटक रही है, यही देख कर मुझे कष्ट हो रहा है ।

द्रौपदी बोली—महाराज ! मालूम पड़ता है मुझे अभी तक आप ने नहीं पहिचाना । जहाँ आप हैं वहाँ मुझे सुख ही सुख है । आप के सुख में मेरा सुख है और दुःख में दुःख । विवाह के बाद पहली

रात मैंने कुम्हार के घर में आप सभी के चरणों में सीकर बिताई थी। उम समय मुझे सुहागरात में कम आनन्द हुआ था। इसलिए मेरी बात तो छोड़िए। अपने चारों भाइयों के विषय में विचार कीजिए। इन्हीं के लिए आप चन्वन में फँसे। इन्हीं के लिए आप ने यज्ञ किया और इन्हीं के लिए आप इन्द्रप्रस्थ के राजा बने। जिन से शत्रु घर घर काँपते हैं ऐसे आपको भाई पेट भरने के लिए जंगलों में रख दूँ गे हैं। क्या इस बात का आप को खयाल है? कभी आपको इस बात का विचार भी आता है?

युधिष्ठिर—आता तो है किन्तु—

द्रौपदी—नहीं, नहीं, यह विचार आप को नहीं आता। भरे दरबार में आपने अपनी स्त्री को जुए की बाजी पर रक्खा। आप की आँखों के सामने उसके बाल खींचे गए। कपड़े खींच कर उसे नंगी करने का प्रयत्न किया गया। उसे अपमानित किया गया। हमको 'शाप दिलाने' की इच्छा में दुर्वासा ऋषि को बड़े परिवार के साथ यहाँ भेजा गया। दुर्योधन का वहनोई मुझे यहाँ से उठा ले गया। लोखे का घर बना कर हम सब को जला डालने का प्रयत्न किया गया। फिर भी आप को दया आ रही है। आप का मन दुर्योधन को क्षमा करने का हो रहा है। महाराज! मैं उन सब बातों को नहीं भूल सकती। दुःशासन के द्वारा किया गया अपमान मेरे हृदय में काँटे के समान चुभ रहा है। सबेरे हृदय से समझाने पर भी वह नहीं मानेगा। युद्ध के बिना मैं भी नहीं मान सकती। आप की क्षमा क्षमा नहीं है। यह तो कायरता है। वज्रियों में ऐसी क्षमा नहीं होती। फिर भी यदि आप इस कायरता पूर्ण क्षमा को ही धारण करना चाहते हैं तो स्पष्ट कह दीजिए। आप संन्यास धारण कर लीजिए। हम शत्रुओं से अपने आप निपट लेंगे। पहले उनका सहार करके राज्य प्राप्त करेंगे, फिर आप के पास आकर संन्यास

की बातें करेंगे। द्रौपदी की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। उस में-चत्रियाणी का खून उबलने लगा।

युधिष्ठिर-द्रौपदी ! मुझे भी ये मारी बातें याद हैं। फिर भी अभी एक वर्ष की देर है। हमें अज्ञातवास करना है। बाद में देखा जाएगा। फिर भी मैं कहता हूँ कि यदि उसे सच्चे हृदय से प्रेम पूर्वक समझाया जाय तो वह अब भी मान सकता है। उसका हृदय परिवर्तित हो जाएगा।

द्रौपदी-हाँ, हाँ ! आप समझा कर देखिए, मैं तो युद्ध के सिवाय कुछ नहीं चाहती।

युधिष्ठिर सत्यवादी थे। अहिंसा और सत्य पर उनका दृढ़ विश्वास था। उनका विचार था कि इन दोनों में अनन्त शक्ति है। मनुष्य या पशु कोई कितना भी क्रूर हो किन्तु इन दोनों के सामने उसे झुकना ही पड़ता है। द्रौपदी का विश्वास था-विष की औषधि विष होता है। हिंसक तथा क्रूर व्यक्ति अहिंसा से नहीं समझाया जा सकता। दुष्ट व्यक्ति में जो घुरी भावना उठती है तथा उसके द्वारा वह दूसरे व्यक्तियों को जिम वेग के साथ नुकसान पहुँचाना चाहता है उमका प्रतिकार केवल हिंसा ही है। एक बार, उसके वेग को हिंसा द्वारा क्रम कर देने के बाद उपदेश या अहिंसा काम कर सकते हैं।

द्रौपदी और युधिष्ठिर अपने अपने विचारों पर दृढ़ थे।

वनवास के चारह साल बीत गए। गुप्तवास का १३ वाँ साल वितान के लिये पाण्डवों ने भिन्न २ प्रकार के वेश पहिने। विराट नगर के शमशान में आकर उन्होंने आपस में विचार किया। अर्जुन ने अपना गाण्डीय धनुष एक वृक्ष की शाखा के साथ इस प्रकार बाँध दिया जिससे दिखाने में न पड़े। सभी ने एक एक दिन के अन्तर से नगर में जाकर नौकरी कर ली।

युधिष्ठिर ने अपना नाम कर रखवा और राजा के पुरोहित

पने की नौकरी कर ली। भीम ने वल्लभ के नाम से रसोइए की, अर्जुन ने बृहन्नला के नाम से राजा के अन्तःपुर में नृत्य मिखान की, नकुल और सहदेव ने अश्वपालक और गोपालक की तथा द्रौपदी ने सैरन्ध्री के नाम से रानी के दासीपने की नौकरी कर ली। वे अपने गुप्तवाम का समय बिताने लगे।

रानी का भाई कीचक बहुत दुष्ट और दुराचारी था। वह द्रौपदी को बहुत तंग किया करता था। एक बार द्रौपदी भीम के पास गई और उमके पूछने पर कहने लगी—

रानी का भाई कीचक मेरे पीछे पड़ा है। एक बार भरी सभा में उमने मेरे लोत मारी। युधिष्ठिर महाराज तो क्षमा के सागर उहरे। उन्होंने कहा—भद्रे ! तुम्हारी रक्षा पाँच गन्धर्व करेंगे। अब तो कीचक बुरी तरह पीछे पड़ गया है। रानी भी उसे साथ दे रही है, नार नार मुझे उमके पास भेजती है।

भीम—तुम उमे किसी स्थान पर मिलने के लिए बुलाओ।
द्रौपदी—कल रात को नई नृत्यशाला में मिलने के लिए उम कहूँगी किन्तु भूल न हो, नहीं तो बहुत बुरा होगा।

भीम—भूल कैसे हो सकती है ? तुम्हारे स्थान पर मैं सो जाऊँगा और उसके आते ही साग काम पूरा कर दूँगा।

दूसरे दिन निश्चित समय पर कीचक नई नृत्यशाला में गया। मोए हुए व्यक्ति को सैरन्ध्री समझ कर उमके पास गया। आलिंगन करने के लिए झुका। भीम ने उसे अपनी भुजाओं में कस-कर-ऐसा दबाया कि वह निर्जीव होकर वहीं गिर पड़ा।

कीचक की मृत्यु का समाचार सारे शहर में फैल गया। रानी ने समझा, यह काम सैरन्ध्री के गन्धर्वों ने किया है। उसने सैरन्ध्री को कीचक के साथ जला डालने का निश्चय किया और कीचक की अर्धा के साथ उमे बाँध दी।

भीम को यह बात मालूम पड़ी । भयंकर रूप बना कर वह श्मशान में गया, अर्थात् ले जाने वाले लोगों को मार मगाया और द्रौपदी को बन्धन में मुक्त कर दिया ।

तेरहवाँ वर्ष पूरा होने पर पाँचों पाण्डव प्रकट हुए । विराट राजा और उसकी रानी ने सभी में चमा मागी । द्रौपदी को दिए हुए दुःख के लिए रानी ने पश्चात्ताप किया ।

पाण्डव अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुके थे । शर्त के अनुसार अब राज्य उन्हें वापिस मिले जाना चाहिए था किन्तु दुर्योधन की नीयत पहले से ही बिगड़ चुकी थी । इतने माल राज्य करते करते उसने बड़े बड़े योद्धाओं को अपनी तरफ मिला लिया था । द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा वगैरह बड़े बड़े महारथी उसके पक्ष में हो गए थे । राजा होने के कारण सैनिक शक्ति भी उसने बहुत इकट्ठी कर ली थी । उसे अपनी विजय पर विश्वास था । वह मोचता था, पाण्डव इतने दिनों में वन में निवास कर रहे हैं फिर मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं । इन सब बातों को सोच कर राज्य वापिस करने में इन्कार कर दिया ।

पाण्डवों को अपने मल पर विश्वास था । दुर्योधन द्वारा किया गया अपमान भी उनके मन में खटके रहा था । इस लिए वे युद्ध के लिए तैयार हो गए, किन्तु युधिष्ठिर शान्तिप्रिय थे । वे चाहते थे जहाँ तक हो सके युद्ध को टालना चाहिए । दुर्योधन की इस मनोवृत्ति को देख कर उन्होंने सोचा— यदि अपनी आजीविका के लिए हम लोगों को सिर्फ पाँच गाँव मिल जायें तो भी गुजारा हो सकता है । यदि इतने पर भी दुर्योधन मान जाय तो रक्तपात रुक सकता है । श्रीकृष्ण भी जहाँ तक हो सके, शान्ति को कायम रखना चाहते थे । युधिष्ठिर ने अपनी बात श्रीकृष्ण के सामने रखी और उन्हीं पर सन्धि का भारा भार डाल दिया ।

द्रौपदी को युधिष्ठिर की यह बात अच्छी न लगी। दुःशासन द्राग किया गया अपमान उसके हृदय में काँटों की तरह चुभ रहा था। वह उसका बदला लेना चाहती थी। अपने खुले हुए केशों को हाथ में लेकर द्रौपदी श्रीकृष्ण से कहने लगी—प्रभो! आप सन्धि के लिए जा रहे हैं। विशाल साम्राज्य के उदले पाँच गाँव देकर कौन सन्धि न करेगा? उसमें भी जब सन्धि कराने वाले आप सरीखे महापुरुष हों आपन हमारे भग्न पोषण के लिए पाँच गाँवों को पर्याप्त मान कर शान्ति रखना उचित ममका है, किन्तु मैं गाँवों की भूखी नहीं हूँ। जंगल में रह कर भी मैं अपने दिन प्रमत्ततापूर्णक काट सकती हूँ। मुझे साम्राज्य की परवाह नहीं है। मैं तो अपने इन केशों के अपमान का बदला चाहती हूँ। जिस समय दुष्ट दुःशासन ने इन्हें खींचा था, मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक ये केश उसके रक्त से न सींचे जाएंगे तब तक मैं इन्हें न बाँधूँगी। क्या मेरे ये केश खुले ही रह जाएंगे? क्या एक महिला का अपमान आपके लिये कोई महत्त्व नहीं रखता? भीम ने दुःशासन का वध और दुर्योधन की जंघा चूर-चूर करने की प्रतिज्ञा की है। क्या उसकी प्रतिज्ञा अपूर्ण ही रह जायगी?

दुर्योधन ने हमारे साथ क्या नहीं किया? जहर देकर मार डालने का प्रयत्न किया, लाख के धर में जला देना चाहा, दुर्वासा मुनि से शाप दिलाने की कोशिश की, हमारा जगह जगह अपमान किया, मेरी लाज छीनने में भी कसर नहीं रखी। यन्त्रवाम तथा युष्मत्स के बाद शर्त के अनुसार हमें सारा साम्राज्य मिलना चाहिए। उसके उदले आप पाँच गाँव लेकर सन्धि करने जा रहे हैं, क्या यह अन्याय का पोषण नहीं है? क्या यह पापी दुर्योधन के लिए आपका पक्षपात नहीं है? क्या हमारे अपमानों का यही बदला आपका पक्षपात नहीं है? क्या हमारे अपमानों का यही बदला

द्रौपदी की वक्तृता सुन कर सभी लोग दग रह गए। उन्हें

मालूम पड़ने लगा जैसे उसके शरीर में कोई देवी उतर आई हो। सब के सब युद्ध के लिए उचोजित हो उठे। पाँच गाँव लेकर सन्धि करना उन्हें अन्याय मालूम पड़ने लगा।

श्रीकृष्ण द्रौपदी की बातों को धैर्यपूर्वक सुनते रहे। अन्त में कहने लगे—द्रौपदी! तुमने जो बातें कहीं हैं वे अचरशः सत्य हैं। तुम्हारे माथ कौरवों ने जो दुर्व्यवहार किया है उसका बदला युद्ध के सिवाय कुछ नहीं है। सारी दुनियाँ ऐसा ही करती है। किन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि अहिंसा में कितनी शक्ति है। हिंसा पार्श्विक बल है। क्या उसके बिना काम नहीं चल सकता? सभी शास्त्र हिंसा की अपेक्षा अहिंसा में अनन्तगुणी शक्ति मानते हैं। मैं इस सत्य का प्रयोग करके देखना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ तुम दुनियाँ के सामने यह आदर्श उपस्थित करो कि अहिंसा हिंसा को किम प्रकार दबा सकती है महाराज युधिष्ठिर का भी यही कहना है।

तुम्हारी पुरानी घटनाओं में सब जगह अहिंसा की जीत हुई है। दुःशासन ने तुम्हें अपमानित करने का प्रयत्न किया। द्रौपदी! तुम्हीं बताओ इस में हार किस की हुई? दुःशामन की या तुम्हारी? वास्तव में पतन किमका हुआ, उसका या तुम्हारा? यदि उस समय शस्त्र से काम लिया जाता तो पाण्डव प्रतिज्ञाभ्रष्ट हो जाते। ऐसी दशा में पाण्डवों का उज्ज्वल यश मलिन हो जाता। लाक्षागृह और दूसरी सभी घटनाओं में तुम लोगों ने शान्ति से काम लिया और अहिंसा द्वारा विजय प्राप्त की। वह विजय मदा के लिए अमर रहेगी और संसार को कल्याण का मार्ग बताएगी। मैं चाहता हूँ तुम उसी प्रकार की विजय फिर प्राप्त करो। खून खराबी द्वारा उस विजय को मलिन न बनाना चाहिए।

द्रौपदी! तुम इन केशों को दिखा रही हो। ये केश तो भौतिक हैं। थोड़े दिनों बाद अपने आप मिट्टी में मिल जाएंगे। इन

का लोच करके भी तुम अपनी प्रतिज्ञा से छुटकारा पा सकती हो। किन्तु अहिंसा धर्म के जिस महान् आदर्श को तुमने अब तक दुनियाँ के सामने रक्खा है उसे मलिन न होने दो। उसके मलिन होने पर वह ध्वजा मिटना अमम्व हो जाएगा। उस महान् आदर्श के सामने भीम की प्रतिज्ञा भी तुच्छ है।

तुम वीराङ्गना और वीर पुत्री हो। मैं तुम में सच्ची वीरता की आशा रखता हूँ। मन्त्री वीरता धर्म की रक्षा में है, दूसरे के प्राण लेने में नहीं। द्रौपदी ! जिस आत्मिक बल ने तुम्हारी चीरहरण के समय रक्षा की थी वही तुम्हारी प्रतिज्ञाओं को पूरा करेगा। वही तुम्हारे केशों के धब्बे को मिटाएगा। उम्मी पर निर्भर रहो। पाशविक बल की ओर ध्यान मत दो।

कृष्ण की बातों से द्रौपदी का आनंद कम हो गया। वह शान्त होकर बोली—आप प्रयत्न कीजिए अगर दुर्योधन मान जाय।

श्रीकृष्ण दुर्योधन के पास गए किन्तु उसने उनकी एक भी बात नहीं मानी। उसे अपनी पाशविक शक्ति पर गर्व था। उसने उत्तर दिया—पाँच गाँव तो बहुत बड़ी चीज है। मैं सूर्य के अग्र-भाग जितनी जमीन भी बिना युद्ध नहीं दे सकता। श्रीकृष्ण द्वारा की गई सन्धि की बातचीत निष्फल हो गई। दुर्योधन की पशविक लिप्सा सभी लोगों के सामने नग्न रूप में आ गई।

दोनों ओर से युद्ध की तैयारियाँ हुईं। कुरुक्षेत्र के मैदान में अठारह अक्षौहिणी सेना खून की प्यासी बन कर आ डटी। महान् नरसंहार होने लगा। खून की नदियाँ बह चलीं। विजय पाण्डवों की हुई किन्तु वह विजय द्वार में भी बुरी थी। पाँच पाण्डवों को छोड़ कर मारे सैनिक युद्ध में काम आगए। मेदिनी लाशों से भर गई। देश की युवाशक्ति मटियामेट हो गई। लाखों
से भरी इन्द्रप्रस्थपुरी में

राजा दशरथ ने कैकयी से कहा— हे प्रिये ! तुम्हारे सारथीपन का कारण ही मेरी विजय हुई है । मैं इसमें बहुत प्रसन्न हूँ । तुम कोई वर मागो । कैकयी ने उत्तर दिया— स्वामिन् ! समय आयेगा न मोंग लूँगी । अभी आप इसे अपने ही पास 'धरोहर' की भाँति रखिए । इसके पश्चात् राजा दशरथ कैकयी को लेकर अपने नगर में चले आए । कुछ समय बाद उसने सर्वाङ्गसुन्दरी राजकुमारी सुमित्रा (मित्राभू, सुशीला) और सुप्रभा के साथ विवाह किया ।

रानियों के साथ राजा दशरथ सुखपूर्वक अपना समय बिताने लगे । रानी कौशल्या में अनेक गुण थे । उस का स्वभाव बड़ा सीधा सादा और मरल था । साँतिया डाढ़ तो उसके अन्दर नाम मात्र की भी न था । कैकयी, सुप्रभा और सुमित्रा को वह अपनी छोटी बहिनें मान कर उनके साथ बड़े प्रेम का व्यवहार करती थी । मद्-गुणों के कारण राजा ने उसे पटरानी बना दिया ।

एक समय रात्रि के पिछले पहर में कौशल्या ने बलदेव के जन्म सूचक चार महास्वप्न देखे । उसने अपने देखे हुए स्वप्न राजा को सुनाये । राजा ने कहा— प्रिये ! तुम्हारी कुक्षि से एक महान प्रतापी पुत्र का जन्म होगा । रानी अपने गर्भ का यत्न पूर्वक पालन करने लगी । गर्भस्थिति पूरी होने पर रानी ने पुण्डरीक कमल के समान वर्ण वाले पुत्र को जन्म दिया ।

पुत्र जन्म से राजा दशरथ को अत्यन्त हर्ष हुआ । प्रजापुत्रियों मनाने लगीं । अनेक राजा विविध प्रकार की भेंटें लेकर राजा दशरथ की मेवा में उपस्थित होने लगे । खजाने में पदार्थ (लक्ष्मी) की बहुत वृद्धि हुई, इसमें राजा दशरथ ने पुत्र का नाम पद्म रखा । लोगों में ये राम के नाम से प्रख्यात हुए । ये बलदेव थे ।

कुछ समय पश्चात् रानी सुमित्रा ने एक रात्रि के शेष भाग में बलदेव के जन्म सूचक मात महास्वप्न देखे । समय पूरा होने पर उसने

एक प्रतापी, तेजस्वी और पुण्यशाली पुत्र को जन्म दिया। पुत्र जन्म में राजा, रानी तथा प्रजा सभी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। राना ने पुत्र का नाम नारायण रक्खा किन्तु लोगों में वह 'लक्ष्मण' इस नाम से प्रख्यात हुआ। ये दोनों भाई पृथ्वी पर चन्द्र और सूर्य के समान शोभित होने लगे।

इसके पश्चात् कैकयी की कुक्षि में भरत और सुप्रभा की कुक्षि से शत्रुघ्न ने जन्म लिया। योग्य समय पर कलाचार्य के पास सब कलाएं सीख कर चारों भाई कला में प्रवीण हो गये।

एक समय चार ज्ञान धारक एक मुनिराज अयोध्या में पधारे। राजा दशरथ उन्हें वन्दना नमस्कार करने के लिये गया। मुनि ने सम्योचित धर्मदेशना दी। राजा ने अपने पूर्वभग्न के विषय में पूछा। मुनिराज ने राजा को उसका पूर्वभग्न कह सुनाया जिसमें उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को राज्य सौंप कर दीक्षा लेने का निश्चय किया।

राम के राज्याभिषेक की बात सुन कर कैकयी के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। उसने स्वयंवर के समय दिये हुए वरदान को इस समय राजा से मागा और कहा कि मेरे पुत्र भरत को राज्य मिले और राम को वनवास। इस दुःखद वरदान का सुन कर राजा को मूर्च्छा आ गई। जब राम को इस बात का पता लगा तो वे शीघ्र ही वहाँ आये। शीतल उपचारों से राजा की मूर्च्छा दूर कर उनकी आज्ञा से उन जाने को तैयार हुए। सब से पहले वे माता कैकयी के पास आये। उस प्रणाम कर उन जाने की आज्ञा माँगी। इसके पश्चात् वे माता कौशल्या के पास आये। वन जाने की बात सुन कर उनको अति दुःख हुआ किन्तु इस सारे प्रपच को रचने वाली दामी मन्थरा पर और कठिन वरदान को माँगने वाली रानी कैकयी पर उन्होंने

किमी प्रकार के कष्टतापूर्ण शब्दों का प्रयोग ही किया। माता कौशल्या ने गम्भीरता और धैर्य पूर्वक राम को वन में जाने की अनुमति दी। पतिव्रता सीता भी राम के साथ वन को गई और लक्ष्मण भी उनके साथ वन को गया।

कौशल्या के हृदय में जितना स्नेह राम के लिये था उतना ही स्नेह लक्ष्मण और भरतादि के लिये भी था। सीता हरण के कारण रावण के साथ संग्राम करते हुए लक्ष्मण की शक्ति बाण लगा और वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा यह खबर जब अयोध्या पहुँची तो रानी कौशल्या को बहुत दुःख हुआ। वह सोचने लगी राम ! तुम लक्ष्मण के बिना वापिस अकेले कैसे आओगे ? व्याकुल होती हुई सुमित्रा को उसने आश्वासन देकर धैर्य बंधाया। इतने में नारद ने आकर लक्ष्मण के स्वस्थ होने की खबर कौशल्या आदि रानियों को दी तब कहीं जाकर उनकी चिन्ता दूर हुई।

अपने पराक्रम से लका पर विजय प्राप्त करके लक्ष्मण और सीता सहित राम वापिस अयोध्या में आये। भरत के अत्याग्रह में राम ने अयोध्या का राज्य स्वीकार किया।

रानी कौशल्या ने राम को वन में जाते देखा और लका पर विजय प्राप्त कर वापिस लौटते हुए भी देखा। राम को वनवासी तपस्वी वेष में भी देखा और राज्य वैभव में युक्त राजसिंहासन पर बैठे हुए भी देखा। कौशल्या ने पति सुख भी देखा और पुत्र-प्रियोग के दुःख को भी सहन किया। वह राजरानी भी बनी और राजमाता भी बनी। उमने ममार के सारे रंग देख लिये किन्तु उसे कहीं भी आत्मिक शान्ति का अनुभव नहीं हुआ। ससार के प्रति उसे वैराग्य हो गया। मासारिक बंधनों को तोड़ कर अपने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। कई वर्षों तक शुद्ध समय का कर सद्गति की प्राप्ति किया।

(७) मृगावती

मृगावती वैशाली के प्रेमिद्ध महाराजा चंद्रक (चिंटा) की पुत्री थी। उसकी एक बहिन का नाम पद्मावती था। जो चम्पा के राजा दधिव्राह्म की रानी थी। मती पद्मावती ने भी अपने उज्ज्वल चरित्र द्वारा सोलह मतियों के पवित्र हार को सुशोभित किया है। उसका चरित्र आगे दिया जाएगा।

मृगावती की दूसरी बहिन का नाम त्रिशला था। जो मद्राज सिद्धार्थ की रानी थी। उसी के गर्भ में चरम तीर्थहर श्रमण भगवान् महावीर का जन्म हुआ था। पद्मावती और त्रिशला के मित्रा मृगावती के चार बहिनें और थीं।

मृगावती बहुत सुन्दर, धर्म परगण और शूलपत्नी थी। उसका ब्रह्म कौशिकी के महाराजा श्रमणीक के भाव हुआ था।

गुणों के कारण वह उसकी पटरानी बन गई थी।

राखिज्य, व्यसय और कला कौशल के लिए

किसी प्रकार के कटुतापूर्ण शब्दों का प्रयोग ही किया। माता कौशल्या ने गम्भीरता और धैर्य पूर्वक राम को उन में जान की अनुमति दी। पतिव्रता सीता भी राम के साथ वन को गई और लक्ष्मण भी उनके साथ वन को गया।

कौशल्या के हृदय में जितना स्नेह राम के लिये था उतना ही स्नेह लक्ष्मण और भरतादि के लिये भी था। सीता हरण के कारण रावण के साथ मग्न होकर रहते हुए लक्ष्मण की शक्तिशाली लगा और वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा यह खबर जब अयोध्या पहुँची तो रानी कौशल्या को बहुत दुःख हुआ। वह सोचने लगी राम ! तुम लक्ष्मण के बिना वापिस अकेले कैसे आओगे ? व्याकुल होती हुई सुमित्रा को उमने आश्वामन देकर धैर्य प्रधाया। इतने में नारद ने आकर लक्ष्मण के स्वस्थ होने की खबर कौशल्या आदि रानियों को दी तब कही जाकर उनकी चिन्ता दूर हुई।

अपने पराक्रम से लंका पर विजय प्राप्त करके लक्ष्मण और सीता सहित राम वापिस अयोध्या में आये। भरत के अग्रयात्र में राम ने अयोध्या का राज्य स्वीकार किया।

रानी कौशल्या ने राम को वन में जाते देखा और लंका पर प्राप्त हुए वापिस लौटते हुए भी देखा। राम को वनवासी के वेष में भी देखा और राज्य वैभवं में युक्त राजसिंहासन पर बैठे हुए भी देखा। कौशल्या ने पति सुख भी देखा और पुत्र के दुःख को भी सहन किया। वह राजरानी भी नहीं और राजमाता भी नहीं। उमने संसार के सारे रंग देख लिये किन्तु उसे कहीं भी आत्मिक शान्ति का अनुभव नहीं हुआ। संसार प्रति उसे वैराग्य हो गया। सासारिक बंधनों को तोड़ कर दीक्षा अङ्गीकार कर ली। कई वर्षों तक शुद्ध संयम का कर सद्गति को प्राप्त किया।

(७) मृगावती

मृगावती वैशाली के प्रसिद्ध महाराजा चेटक (चेडा) की पुत्री थी। उसकी एक बहिन का नाम पद्मावती था। जो चम्पा के राजा दधिविवाहन की रानी थी। मती पद्मावती ने भी अपने उज्ज्वल चरित्र द्वारा सोलह सतियों के पवित्र हार को सुशोभित किया है। उसका चरित्र आगे दिया जाएगा।

मृगावती की दूसरी बहिन का नाम त्रिशला था। जो महाराज सिद्धार्थ की रानी थी। उसी के गर्भ से चरम तीर्थङ्कर भ्रमण भगवान् महावीर का जन्म हुआ था। पद्मावती और त्रिशला के मित्राय मृगावती के चार बहिनें और थीं।

मृगावती बहुत सुन्दर, धर्म परायण और गुणवती थी। उसका विवाह कौशाम्बी के महाराजा शतानीक के साथ हुआ था। अपने गुणों के कारण वह उसकी पटरानी बन गई थी।

कौशाम्बी वाणिज्य, व्यवसाय और कला कोशल के लिए प्रसिद्ध थी। जहाँ बहुत से चित्रकार रहते थे।

एक बार कौशाम्बी का एक चित्रकार चित्रकला में अधिक प्रवीण होने के लिए साकेतनगर गया। जहाँ एक बुढ़िया चितेरन के घर ठहर गया। बुढ़िया का लड़का चित्रकला में बहुत निपुण था। कौशाम्बी का चित्रकार वहीं रह कर चित्रकला सीखने लगा।

एक बार बुढ़िया के घर राजपुरुष आए। वे उसके लड़के के नाम की चिड़ी लाए थे। बुढ़िया उन्हें देख कर छाती और सिर कूटती हुई जोर जोर से रोने लगी। कौशाम्बी के चित्रकार ने उसे रोने का कारण पूछा। बुढ़िया ने कहा—बेटा! यहाँ नाम के यश । वहाँ प्रति वर्ष मेला भरता है

मेल के दिन किसी न किसी चित्रकार को उम यक्ष का चित्र अवश्य बनाना पड़ता है। यदि चित्र में किसी प्रकार की त्रुटि रह जाय तो यक्ष चित्रकार के प्राण ले लेता है। यदि उम का चित्र बनाने के लिए कोई तैयार न हो तो यक्ष कुपित होकर नगर में उपद्रव मचाने लगता है। बहुत से लोगों को मार डालता है।

इस बात से डर कर बहुत से चित्तेरे नगर छोड़ कर भाग गए, फिर भी यक्ष का कोप कम नहीं हुआ। माकैतनपुर में सभी लोग भयभीत रहने लगे। यह देख कर यक्ष को प्रसन्न करने के लिए राजा ने सिपाहियों को भेज कर चित्तेरे को फिर नगर में बुला लिया। मेल के दिन प्रत्येक चित्रकार के नाम की चिट्ठी घड़े में डाल कर एक कन्या द्वारा निकलवाई जाती है। जिसके नाम की चिट्ठी निकलती है उमी को यक्ष का चित्र बनाने के लिए जाना पड़ता है। आज मेल का दिन है। मेरे पुत्र के नाम की चिट्ठी निकली है। मेरा यह डकलौता पेटा है। इसी की कमाई में घर का निभाव हो रहा है यह चिट्ठी यमराज के घर का निमन्त्रण है। इस वृद्धा-
में इस पुत्र के बिना मेरा कौन महारा है ?

कौशाम्बी के चित्रकार न कहा— माताजी ! आप शोक मत । यक्ष का चित्र बनाने के लिए आपके पुत्र के बदले मैं जाऊँगा। इस प्रकार उमने वृद्धा के शोक को दूर कर दिया। उत्साह और साहस पूर्वक वह पुलिम के साथ हो लिया। उमने समय अष्टम तप का पञ्चस्त्राण कर लिया और चित्र बनाने लिए केसर, कस्तूरी आदि महा सुगन्धित पदार्थों को साथ ले। पवित्र होकर वह यक्ष के मन्दिर में पहुँचा। केसर, चन्दन, कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थों के विविध रंग बना कर यक्ष का चित्र बनाया। फिर चित्र की पूजा करके मे उसके सामने बैठ कर और हाथ जोड़ कर कहने

मेले के दिन किमी न किनी चित्रकार को उन यक्ष का चित्र खवरप बनाना पड़ता है। यदि चित्र में किनी प्रकार की त्रुटि रह जाय तो यक्ष चित्रकार के प्राण ले लेता है। यदि उन का चित्र बनाने के लिए कोई तैयार न हो तो यक्ष क्रुपित होकर नगर में उपद्रव मचाने लगता है। बहुत से लोगों को मार डालता है।

इस बात से डर कर बहुत से चितरे नगर छोड़ कर भाग गए, फिर भी यक्ष का कोप कम नहीं हुआ। तार्वेतनपुर में भी लोग भयभीत रहने लगे। यह देख कर यक्ष को प्रसन्न करने के लिए राजा ने निपाहियों को भेज कर चितरों को फिर नगर में बुला लिया। मेले के दिन प्रत्येक चित्रकार के नाम की चिट्ठी घड़े में डाल कर एक कन्या द्वारा निकलवाई जाती है। जिसके नाम की चिट्ठी निकलती है उन्हीं को यक्ष का चित्र बनाने के लिए जाना पड़ता है। आज मेले है। मेरे पुत्र के नाम की चिट्ठी निकली

हे यक्षाधिराज ! मैंने आप का चित्र बनाया है । उस में यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो इस सेवक को क्षमा कीजिएगा । आप के मन्तोष से सभी का कल्याण है । नगर के सभी लोग आपकी प्रसन्नता चाहते हैं ।

यक्ष चित्रकार की स्तुति से प्रमत्त हो गया और बोला—चित्रकार ! मैं तुम पर सन्तुष्ट हूँ । अपना इच्छित वर मागो ।

चित्रकार ने कहा— यदि आप प्रमत्त हैं तो अब यहाँ के लोगों को अभयदान दे दीजिए । दया स्वर्ग और मोक्ष की जननी है ।

चित्रकार का परोपकार से भरा हुआ कथन सुन कर यक्ष और भी प्रमत्त हो गया और बोला—आज से लेकर जीवन पर्यन्त मैं किसी जीव की हिंसा नहीं करूँगा । किन्तु यह वरदान तो मेरी मद्दति या परोपकार के लिए है । तुम अपने लिए कोई दूसरा वर मागो ।

चित्रकार ने उत्तर दिया—आपने मेरी प्रार्थना पर ध्यान देकर जीव हिंसा को बन्द कर दिया, यह बड़े हर्ष की बात है । यदि आप विशेष प्रसन्न हैं तो मैं दूसरा वर माँगता हूँ—आप अपने मन को आत्मकल्याण की ओर लगाइए ।

यक्ष अत्यन्त प्रमत्त होकर बोला— तुम्हारी बात मैं स्वीकार करता हूँ, किन्तु यह भी मेरे हित के लिए है । तुम अपने हित के लिए कुछ मागो ।

यक्ष के बार बार आग्रह करने पर चित्रकार ने कहा— यदि आप मेरे पर अत्यधिक प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दीजिए कि मैं किसी व्यक्ति या वस्तु के एक भाग को देख कर सारे का चित्र खींच सकूँ ।

यक्ष ने 'तथाऽस्तु' कह कर उसकी प्रार्थना के अनुसार वर दे दिया । चित्रकार अपने अभीष्ट को प्राप्त कर बहुत खुश हुआ और अपने स्थान पर चला आया । उसके मुँह से सारा सुन कर राजा और प्रजा

हुआ । सभी

आनन्द पूर्वक रहने लगे । चित्रकार अपनी कुशलता के कारण सत्र जगह प्रसिद्ध हो गया । उसकी कीर्ति दूर दूर तक फैल गई ।

एक बार शतानीक ने अपनी चित्रशाला चित्रित करने के लिए उमी चित्रकार को बुलाया । राजा ने उसकी बहुत प्रशंसा की और अपनी चित्रशाला में विविध प्रकार के प्राणी, सुन्दर दृश्य तथा दूसरी वस्तुएँ चित्रित करने के लिए कहा ।

चित्रकार अपनी कारीगरी दिखाने लगा । सिंह, हाथी आदि प्राणी ऐसे मालूम पड़ते थे जैसे वे अभी बोलेंगे । प्राकृतिक दृश्य ऐसे मालूम पड़ते थे जैसे वास्तविक हों । सभी चित्र सजीव तथा भाव पूर्ण थे ।

एक बार रानी मृगावती अपने महल की खिड़की में बैठी हुई थी । उसका अगूठा चित्रकार की नजरों में पड़ गया । यत्न द्वारा प्राप्त हुए वरदान के कारण उसने सारी मृगावती का हृबह चित्र बना दिया । चित्र बनाते समय उसकी पीछी ने काले रंग का एक धब्बा चित्र की जाघ पर गिर पड़ा । चित्रकार ने उसे पोंछ दिया, किन्तु फिर भी वहाँ काला चिह्न बना रहा । चित्रकार ने मोचा—मृगावती की जाघ पर सचमुच काला तिल होगा इसी लिए वरदान के कारण बार बार पोंछने पर भी यह दाग यहाँ से नहीं मिटता । यह चिह्न देखने वाले के दिल में सन्देह पैदा करने वाला है, किन्तु नहीं निकलने पर क्या किया जाय । इस चित्र को वस्त्र पहिना देने चाहिए जिससे यह तिल ढक जाय । यह सोच कर काम को दूसरे दिन के लिए बन्द करके वह अपने घर चला गया ।

अचानक उसी समय महाराज शतानीक चित्रशाला देखने के लिए आए । अनेक प्रकार के सुन्दर और कलापूर्ण चित्रों को देख कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई । चित्र देखते हुए वे मृगावती के वस्त्ररहित चित्र के पास आ पहुँचे । चित्र को देख कर उन्हें चित्रकार की कुशलता पर आश्चर्य होने लगा । अचानक उनका ध्यान

जधा पर पड़े हुए तिल के निशान पर गया। राजा के मन में मन्देह हो गया। वे सोचने लगे— इस चित्रकार का मृगावती के साथ गुप्त सम्बन्ध होगा, नहीं तो वह इस तिल को कैसे जान सकता है। उसका अपराध बहुत बड़ा है, इसके लिए उसे मृत्यु दण्ड मिलना चाहिए। यह निश्चय करके राजा ने उसके लिए मृत्युदण्ड की आज्ञा दे दी।

चित्रकार ने क्षमा याचना करने हुए कहा— महाराज ! मुझे यक्ष की तरफ से वरदान मिला हुआ है। यह बात सभी लोग जानते हैं। आप भी इससे अपरिचित न होंगे। उस वर के कारण मैं किसी वस्तु या व्यक्ति का एकश्रद्ध देख कर पूरा चित्र बना सकता हूँ। मैंने महारानी का कैमल एक श्रृंगूठा देखा था, उसी में वर के कारण सारा चित्र खींच दिया। जंघा के दाग को निकालने के लिए मैंने कई बार प्रयत्न किया किन्तु वह न निकला। ठार कर मैंने दूसरे दिन इस चित्र को रुपड़े पहिनाने का निश्चय किया जिस में यह दाग ढक जाय। मैंने आप में सच्ची बात निवेदन कर दी है, अब आप जो चाहें कर सकते हैं। आप हमारे मालिक हैं।

राजा ने चित्रकार की परीक्षा के लिए उसे एक कुन्ना का केवल मुह दिखा कर सारी का चित्र बनाने की आज्ञा दी। चित्रकार ने कुन्ना का दृढ़ चित्र बना दिया। राजा को उसकी बात पर विश्वास हो गया। फिर भी उसने इस बात को अपना अपमान समझा कि चित्रकार ने रानी का चित्र उसमें बिना पूछे इस प्रकार बनाया। इस लिए राजा ने यह कहते हुए कि भविष्य में यह किसी कुलवती महिला का चित्र न खींचने पावे, चित्रकार का श्रृंगूठा काट लेने की आज्ञा दे दी।

बिना दोष के दण्डित होने के कारण चित्रकार को बहुत बुरी लगी। उसने मन में बदला लेने का

धीरे धीरे बाएं हाथ से चित्र बनाने का अभ्यास कर लिया। इसके बाद उसने मृगावती का चित्र बनाया और उसे शतानीक के परम शत्रु अवेन्ती के राजा चण्डप्रद्योतन के पास ले गया।

राजा चण्डप्रद्योतन उस सुन्दर चित्र को देख कर आश्चर्य में पड़ गया और चित्रकार से पूछने लगा— यह चित्र काल्पनिक है या वास्तव में इतनी सुन्दर स्त्री ससार में विद्यमान है? ऐसा भाग्य-शाली पुरुष कौन है जिसे ऐसी सुन्दरी पत्नी रूप में प्राप्त हुई है।

चित्रकार ने उत्तर दिया—महाराज! यह चित्र काल्पनिक नहीं है। यह चित्र आपके शत्रु कौशाम्बी के राजा शतानीक की पटरानी मृगावती का है। महाराज! चित्र तो चित्र ही है। मृगावती का वास्तविक सौन्दर्य इसमें हजारों गुणा अधिक है।

चित्रकार की बात सुनते ही राजा के हृदय में काम बिकार जागृत हो गया। साथ में पुराना वैर भी ताजा हो गया। उसने मन में सोचा— ऐसी सुन्दरी तो मेरे महलों में शोभा देती है। शतानीक के पास उसका रहना उचित नहीं है। यह सोच कर अपने वज्रजघ नामक दूत को बुलाया और मृगावती की मागनी करने के लिए शतानीक के पास भेज दिया।

दूत कौशाम्बी पहुँचा। शतानीक के मामले जाकर उसने चण्डप्रद्योतन का सन्देश सुनाया— महाराज! हमारे महाराजों ने आपकी रानी मृगावती की मागनी की है और कहलाया है— जैसे मणि शीशे के साथ शोभा नहीं देती उसी प्रकार मृगावती आपके साथ नहीं शोभती। इस लिए उसे शीघ्र मेरे अधीन कर दीजिए। मुकुट सिर पर ही शोभता है, पैर पर नहीं। यदि आप को अपने जीवन और राज्य की चिन्ता हो तो बिना हिचकिचाए मृगावती को सौंप दीजिए।

दूत का वचन सुन कर शतानीक को बहुत क्रोध आया। उस

ने उत्तर दिया— तुम्हारा राजा महामूर्ख है जो लोक विरुद्ध मागनी करता है। हमेशा कन्या की मागनी होती है विवाहिता स्त्री नहीं मांगी जाती, इस लिए तुम्हारे राजा को जाकर रुकना— तुम्हारे सरीखे पैर के समान नीचे राजा के घर मुकुट जैसी मृगावती नहीं शोभती। वह तो हमारे सरीखे मिर के समान उत्तम राजाओं के अन्तःपुर में ही शोभती है। अगर तुम्हें अपने जीवन, धन और राज्य को सुरक्षित रखना हो तो मृगावती को प्राप्त करने का प्रयत्न मत करना। दूत का पथ करना नीति विरुद्ध समझ कर शतानीक ने उसे अपमानित करके नगरी से बाहर निकलवा दिया।

दूत ने अग्रन्ती में पहुँच कर मारी गत कही। चण्डप्रद्योतन ने कुपित होकर बड़े बड़े चौडह राजाओं की सेना के साथ कौशाम्बी पर चढ़ाई कर दी। मेना ने शीघ्रता से कौशाम्बी पहुँच कर नगरी के चारों तरफ घेरा डाल दिया। राजा शतानीक भी शत्रु को अपने राज्य पर चढ़ाई करते देख कर तैयार होने लगा। उसने नगरी के द्वार बन्द कर दिए और भीतर रह कर लड़ना शुरू किया। शतानीक बहुत देर तक लड़ता रहा परन्तु चण्डप्रद्योतन की सेना बहुत बड़ी थी। सागर के समान उसकी विशाल सेना को देख कर शतानीक हिम्मत हारें गया। डर के कारण उसे भयातिमार हो गया और अन्त में उसी रोग से उसकी मृत्यु हो गई।

अरुस्मात् अपने पति का मरण जान कर मृगावती को बहुत दुःख हुआ। अपने शील की रक्षा के लिए उचित अमर जान कर उसने शोक को हृदय में दबा लिया और एक चाल चली। उसने चण्डप्रद्योतन को कहलाया— मेरे पति का आप के भय से देहान्त हो गया है। इस लिए लौकिक रीति के अनुसार मैं शोक में हूँ। मेरा पुत्र उदयन कुमार अभी छोटा है। वह र को नहीं सम्भाल सकता। इस लिए कुछ समय बाद जब

कुमार, राज्य सम्भाल लेगा और मैं शोक मुक्त हो जाऊँगी तो स्वयं आपके पास चली आऊँगी। आप किसी बात के लिए मुझ पर अप्रमत्त न होइएगा। यदि आपने मेरी इस बात पर ध्यान न दिया और शोक की अवस्था में भी राज्य और मुझ पर अधिकार जमाने का प्रयत्न किया तो मुझे प्राण त्यागने पड़ेंगे। इसमें आपका मनोरथ मिट्टी में मिल जाएगा। इस लिए लड़ाई बन्द करके आप अपने राज्य की ओर चले जाइये इसी में कल्याण है।

राजा ने मृगावती की बात मान ली और लड़ाई बन्द करके मेना सहित अवन्ती की ओर प्रस्थान कर दिया।

चण्डप्रद्योतन के लौट जाने पर मृगावती ने पति का मृत्यु मस्कार किया। कौशाम्बी के चारों ओर मजबूत दीवाल बनवाई जिसमें शत्रु शीघ्र नगरी में न घुस सके। उदयनकुमार को अस्त्र शस्त्रों की शिक्षा दी। धीरे धीरे उसे राज्य का भार सम्भालन योग्य बना दिया।

चण्डप्रद्योतन अपने मनोरथ की पूर्ति के लिए उत्कण्ठित था। कुछ वर्षों के बाद उसने मृगावती को उलाने के लिए अपने मेवकों को भेजा। मेवकों ने कौशाम्बी में जाकर मृगावती को चण्डप्रद्योतन का मन्देश सुनाया। मृगावती ने उत्तर दिया— मैं तुम्हारे राजा को मन में भी नहीं चाहती। मैंने अपने शील की रक्षा के लिए युक्ति रची थी। महाराजा शतानीक की मृत्यु हो जाने में मैं आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन करूँगी। किसी दूसरे पुरुष को पति के रूप में स्वीकार नहीं कर सकती। इस लिए तुम लोग वापिस जाकर अपने राजा से कह दो कि वह अपने पापपूर्ण विचारों को छोड़ दे। मेवकों को इस बात में खुशी हुई कि मृगावती अपने शील पर दृढ़ है। उन्होंने अवन्ती में जाकर सारी बात राजा से कही। चण्ड-
ने उसी समय कौशाम्बी पर चढ़ाई कर दी और नगरी के

पाम पड़ाव डाल कर दूत द्वारा मृगावती को कहलाया—मृगावती ! यदि तुम अपना और अपने पुत्र का भला चाहती हो तो शीघ्र मेरी बात मानलो नहीं तो तुम्हारा राज्य नष्ट कर दिया जायगा ।

मृगावती ने आपत्ति को आई हुई जान कर नगरी के प्राकार पर सिपाहियों को तैनात कर दिया । सब प्रकार का प्रबन्ध करके वह अपने शील की रक्षा के लिए नवकार मन्त्र का जाप करने लगी ।

उसी समय प्रामानुग्राम विचर कर जगत का कल्याण करते हुए भ्रमण भगवान् महावीर स्वामी कौशाम्बी पधारे । नगरी के बाहर देवों ने समवसरण की रचना की । भगवान् के प्रभाव से आम पास के सभी प्राणी अपने पैर को भूल गए । राजा चण्ड-प्रद्योतन पर भी असर पड़ा । भगवान् का उपदेश सुनने के लिए वह समवसरण में आया । मृगावती को भी भगवान् के आगमन का समाचार जान कर बड़ी खुशी हुई । अपने पुत्र को साथ लेकर वह नगरी के बाहर भगवान् के दर्शनार्थ गई । वह भी धर्मोपदेश सुनने के लिए बैठ गई । भगवान् ने सभी के लिए हितकारक उपदेश देना शुरू किया ।

भगवान् के उपदेश से मृगावती ने उसी समय दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की । यह सुन कर चण्डप्रद्योतन को भी बड़ा हर्ष हुआ । उसने उदयन को कौशाम्बी के राजसिंहासन पर बैठा कर राज्याभिषेक महोत्सव मनाया । मृगावती ने भी राजा को सर्वदैव इसी प्रकार उदयन के ऊपर अपनी कृपादृष्टि रेंनाए रखने का सन्देश दिया ।

इस के बाद मृगावती ने भगवान् के पास दीक्षा धारण कर ली तथा महासती चन्दनबाला की आज्ञा में विचरने लगी ।

एक बार भ्रमण भगवान् महावीर विचरते हुए कौशाम्बी पधारे । चन्दनबाला का भी अपनी शिष्याओं के साथ वही आगमन एक दिन मृगावती अपनी गुरुआनी सती चन्दनबाला

लेकर भगवान् के दर्शनार्थ गई। सूर्य चन्द्र भी अपने मूल बिमान से दर्शनार्थ आए थे, अतः प्रकाश के कारण समय का ज्ञान न रहा। सूर्य चन्द्र चले गये। इतने में रात हो गई। मृगावती अंधेरा हो जाने पर उपाश्रय में पहुँची। वहाँ आकर उमने चन्दनमाला को वन्दना की। प्रवर्तिनी होने के कारण उसे उपालम्भ देते हुए चन्दनमाला ने कहा— साध्वियों को सूर्यास्त के बाद उपाश्रय के बाहर न रहना चाहिये।

मृगावती अपना दोष स्वीकार करके उमके लिये पश्चात्ताप करने लगी। समय होने पर चन्दनमाला तथा दूसरी साध्वियाँ अपने अपने स्थान पर सो गई, किन्तु मृगावती बैठी हुई पश्चात्ताप करती रही। धीरे धीरे उमके घाती कर्म नष्ट हो गए। उमे केवलज्ञान होगया। अंधेरी रात थी। मन मतिगँ मोई हुई थी। उसी समय मृगावती ने अपने ज्ञान द्वारा एक काला माँप देखा। वह चन्दनमाला के हाथ की तरफ आ रहा था। यह देखकर मृगावती ने चन्दनमाला के हाथ को उठा लिया। हाथ के छूए जाने से चन्दनमाला की नींद खुल गई। पूछने पर मृगावती ने माप की बात कह दी और निद्राभंग करने के लिए क्षमा मागी।

चन्दनमाला ने पूछा— अंधेरे में आपने साँप को कैसे देख लिया? मृगावती ने उत्तर दिया— आपकी कृपा से मेरे दोष नष्ट हो गए हैं, अतः ज्ञान की ज्योति प्रकट हुई है। चन्दनमाला— पूर्ण या अपूर्ण?

मृगावती— आपकी कृपा होने पर अपूर्णता कैसे रह सकती है?

चन्दनमाला— तब तो आपको केवलज्ञान प्राप्त हो गया है। बिना जाने मुझसे आशातना हुई है। मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

चन्दनमाला ने मृगावती को वन्दना की। केवली की आशातना के लिए वह पश्चात्ताप करने लगी। उसी समय उमके घाती कर्म नष्ट हो जाने से उमे भी केवलज्ञान होगया।

आयुष्य पूरी होने पर मती मृगावती मित्र, बुद्ध और मुक्त हुई।

(८) सुलसा

आज से लगभग अढ़ाई हजार वर्ष पहले की बात है। मगध देश में राजगृहीक्ष्माम की विशाल नगरी थी। वहाँ श्रेणिक नाम का प्रतापी राजा राज्य करता था। उसके सुनन्दा नाम वाली भार्या में उत्पन्न हुआ अभयकुमार नामक पुत्र था। वह औत्पातिकी, नैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी रूप चारों बुद्धियों का निधान था। वही राजा का प्रधान मंत्री था। नगरी धन, धान्य आदि से पूर्ण तथा सुखी थी।

उसी नगरी में नाग नाम का रथिक रहता था। वह राजा श्रेणिक का सेवक था। उसके श्रेष्ठ गुणों वाली सुलसा नामक भार्या थी। नाग सारथी ने गुरु के समक्ष यह नियम कर लिया था कि मैं कभी दूसरी स्त्री से विवाह नहीं करूँगा। दोनों स्त्री पुरुष परस्पर प्रेमपूर्वक सुख से जीवन व्यतीत करते थे। सुलसा सम्यक्त्व में दृढ़ थी। उसे कभी क्रोध न आता था।

एक बार नाग रथिक ने किमी सेठ के पुत्रों को आगन में खेलते हुए देखा। उच्च देवकुमार के समान सुन्दर थे। उनके खेल से मारा आगन हास्यमय हो रहा था। उन्हें देख कर नाग रथिक के मन में आया-पुत्र के बिना घर सूना है। मग्न प्रकार का सुख होने पर भी सन्तान के बिना फीका मालूम पड़ता है। इस प्रकार के विचारों से उसके हृदय में पुत्रप्राप्ति की प्रबल इच्छा जाग उठी। यह पुत्रप्राप्ति के लिए विविध प्रकार के उपाय मोचने लगा। इस के लिए वह मिथ्यादृष्टि देवों की आराधना करने लगा। सुलसा ने यह देख कर उससे कहा-प्राणनाथ! पुत्र, यश, धन आदि सभी वस्तुओं की प्राप्ति अपने अपने कर्मानुसार होती है। चाँधे हुए कर्म भोगने ही पड़ते हैं। इस में मनुष्य या देव कुछ नहीं कर सकते। मालूम पड़ता है, मेरे गर्भ से कोई सन्तान न होगी

लिए आप दूसरा विवाह कर लीजिए ।

नाग मारथी ने उत्तर दिया—मुझे तुम्हारे ही पुत्र की आवश्यकता है । मैं दूसरा विवाह नहीं करना चाहता ।

सुलसा ने कहा—मन्तान, धन आदि किसी वस्तु का अभाव अन्तराय कर्म के उदय में होता है । अन्तराय को दूर करने के लिए हमें दान, तप, पञ्चब्राह्मण आदि धर्म कार्य करने चाहिए । धर्म से सभी बातों की प्राप्ति होती है । धर्म ही कल्पवृक्ष है । धर्म ही चिन्तामणि रत्न तथा कामधेनु है । मोले प्राणी स्वर्ग और मोक्ष देने वाले धर्म को छोड़ कर इधर उधर भटकते हैं । उत्तम बुद्धि, दीर्घ आयुष्य, स्वस्थ शरीर, पूर्ण इन्द्रियाँ, अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति, परस्पर प्रेम, गुणों का अनुराग, उत्तम सन्तान तथा ऐश्वर्य आदि सभी बातें धर्म में प्राप्त होती हैं । घर में लक्ष्मी, बाहु में बल, दीशों द्वारा दान, देह में सुन्दरता, मुँह में अमृत के समान मीठी वाणी तथा कीर्ति आदि सभी गुणों का कारण धर्म है । . . .

किसी वस्तु के अपन पाम न होने पर खेद न करना चाहिए । उसकी प्राप्ति के लिए शुभ कर्म तथा पुण्य उपार्जन करना चाहिये ।

सुलसा की बात सुन कर नाग मारथी को भी धर्म की ओर विशेष रुचि हो गई । दोनों उसी दिन से दान, त्याग और तपस्या आदि धर्म कार्यों में विशेष अनुराग रखने लगे ।

एक बार देवों की सभा लगी हुई थी । मनुष्यलोक की बात चली । शक्रेन्द्र ने सुलसा की प्रशंसा करते हुए कहा—भरतखण्ड के मगध देश की राजगृही नगरी में नाग नाम का सारथी रहता है । उसकी भार्या सुलसा को कभी क्रोध नहीं आता । वह धर्म में ऐसी दृढ़ है कि देव दानव या मनुष्य कोई भी उसे विचलित करने में समर्थ नहीं हैं । इन्द्र द्वारा की गई प्रशंसा को सुन कर हरिणगवेपी देव सुलसा की परीक्षा करने के लिए मृत्युलोक में आया । दो

साधुओं का रूप बना कर वह सुलसा के घर गया। साधुओं को देख कर सुनसा बहुत हर्षित हुई। मन में सोचने लगी— मेरा अहोभाग्य है कि निर्ग्रन्थ साधु भिक्षा के लिए मेरे घर पधारे हैं। साधुओं की वन्दना नमस्कार करने के बाद सुलसा ने हाथ जोड़ कर, पिनति की— मुनिराज! आप के पधारने से मेरा घर पवित्र हुआ है। आप को जिस वस्तु की चाहना हो फरमाइए।

मुनि ने उत्तर दिया— तुम्हारे घर में लक्ष्मण तेल है। उग्र विहार के कारण बहुत से साधु ग्लान हो गए हैं। उनके उपचार के लिए इसकी आवश्यकता है।

‘लानी हूँ’ कह कर हर्षित होती हुई सुलसा तेल लाने के लिए अन्दर गई, जेमे ही वह ऊपर रखे तेल के भाजन को उतारने लगी कि देवमाया के प्रभाव से वह हाथ में फिसल कर नीचे गिर पड़ा। इसी प्रकार दूसरा और तीसरा भाजन भी नीचे गिर कर फट गया।

इतना नुकसान होने पर भी सुलसा के मन में बिल्कुल खेद नहीं हुआ। बाहर आकर उसने सारा हाल साधुजी से कहा। साधुप्रेषधारी देव प्रसन्न हो गया। उसने अपने असली रूप में प्रकट होकर सुलसा से कहा— शक्रेन्द्र ने जैसी तुम्हारी प्रशंसा की थी, माम्तर में तुम वैसी ही हो। मैंने तुम्हारी परीक्षा के लिए साधु का रूप बनाया था। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। नो तुम्हारी इच्छा हो मागो।

सुलसा ने उत्तर दिया— आप मेरे हृदय की रात जानते ही हैं, फिर मुझे कहने की क्या आवश्यकता है ?

देव ने ज्ञान द्वारा उसके पुत्र प्राप्ति रूप मनोरथ को जान कर सुलसा को पत्तीस गोलियाँ दी और कहा— एक २ गोली खाती जाना। इनके प्रभाव से तुम्हें पत्तीस पुत्रों की प्राप्ति होगी। फिर कभी जब आवश्यकता पड़े मेरा स्मरण करना, मैं उम्मीद उपस्थित हो जाऊंगा। यह कह कर देव अन्तर्धान हो गया।

गोलियों खाने में पहले सुलसा ने सोचा— मैं बत्तीस पुत्रों का क्या करूँगी ? यदि शुभ लक्षणों वाला एक ही पुत्र हो तो वही घर को आनन्द से भर देता है । अकेला चाँद रात्रि को प्रकाशित कर देता है किन्तु अनगिनत तारों से कुछ नहीं होता । इसी प्रकार एक ही गुणी पुत्र वंश को उज्ज्वल बना देता है, निगुण बहुत से पुत्र भी कुछ नहीं कर सकते । अधिक पुत्रों के होने से धर्म कार्य में भी बाधा पड़ती है । यदि मेरे बत्तीस लक्षणों वाला एक ही पुत्र उत्पन्न हो तो बहुत अच्छा है । यह सोच कर उसने सभी गोलियों एक साथ खा लीं । उनके प्रभाव से सुलसा के बत्तीस गर्भ रह गए और धीरे धीरे बढ़ने लगे । सुलसा के उदर में भयङ्कर वेदना होने लगी । उस असह्य वेदना की शान्ति के लिए सुलसा ने हरिणगवेषी देव का स्मरण किया । देव ने प्रकट होकर सुलसा से कहा तुम्हें एक एक गोली खानी चाहिए थी । बत्तीस गोलियों को एक साथ खाने से तुम्हारे एक साथ बत्तीस पुत्रों का जन्म होगा । इन में से किसी एक की मृत्यु होने पर सभी मर जाएंगे । यदि तुम अलग अलग बत्तीस गोलियाँ खाती तो अलग अलग बत्तीस पुत्रों को जन्म देती ।

सुलसा ने उत्तर दिया— प्रत्येक प्राणी को अपने किए हुए कर्म भोगने ही पड़ते हैं । आपने तो अच्छा ही किया था किन्तु अशुभ कर्मों के कारण मुझ से गल्ती हो गई । यदि आप इस वेदना को शान्त कर सकते हैं तो प्रयत्न कीजिए, नहीं तो मुझे गँधे हुए कर्म भोगने ही पड़ेंगे ।

हरिणगवेषी देव ने सुलसा की वेदना को शान्त कर दिया । समय पूरा होने पर उसने शुभ लक्षणों वाले बत्तीस पुत्रों को जन्म दिया । बड़े धूमधाम से पुत्रों का जन्म महोत्सव मनाया गया । नारहवें दिन सभी के अलग अलग नाम रखे गये ।

पाँच पाँच धायमाताओं की देखरेख में सभी पुत्र धीरे धीरे बढ़ने लगे । नाग रथिक का घर पुत्रों के मगुर शब्द, सरल हँसी तथा बालक्रीड़ाओं से भर गया । सभी बालक एक से एक बढ़ कर सुन्दर थे । उन्हें देख कर माता पिता के हर्ष की सीमा न रही । योग्य अवस्था होने पर सभी को धर्म, कर्म और शस्त्र सम्बन्धी शिक्षा दी गई । सभी कुमार पुरुष की कलाओं में प्रवीण हो गए और राजा श्रेणिक की नौकरी करने लगे । युवा अवस्था प्राप्त होने पर नाग रथिक ने कुलीन और गुणवती कन्याओं के साथ उनका विवाह कर दिया ।

एक बार राजा श्रेणिक के पास कोई तापसी (सन्यासिनी) एक चित्र लाई । वह चित्र वैशाली के राजा चेटक की सुज्येष्ठा नामक पुत्री का था । उसे देख कर श्रेणिक के मन में उससे विवाह करने की इच्छा हुई । पिता की इच्छा पूरी करने के लिए अभय कुमार श्रेणिक का वेश बना कर वैशाली में गया । वहाँ जाकर राजमहल के समीप दुकान कर ली । उसकी दुकान पर सुज्येष्ठा की एक दासी सुगन्धित वस्तुओं को खरीदने के लिए आने लगी । अभयकुमार ने एक पट पर श्रेणिक का चित्र बना रक्खा था । जिस समय दासी दुकान पर आती वह उस चित्र की पूजा करने लगती । एक बार दासी ने पूछा—यह किस का चित्र है ?

‘ मैं यह नहीं बता सकता, अभयकुमार ने उत्तर दिया । दासी के बहुत आग्रहपूर्वक पूछने पर अभयकुमार ने कहा— यह चित्र राजा श्रेणिक का है ।

दासी ने सारी बात सुज्येष्ठा से कही । सुज्येष्ठा ने दासी से कहा ऐसा प्रयत्न करो जिससे इस राजा के साथ मेरा विवाह हो जाय । दासी ने जाकर यह बात अभयकुमार से कही । इस पर कुमार ने एक सुरंग तैयार कराई और श्रेणिक महाराज के

लाया—चंद्र शुक्ला द्वादशी के दिन इस सुरंग के द्वारा आप वहाँ आजाइएगा। सुज्येष्ठा को भी इस बात की खबर कर दी कि श्रेणिक राजा द्वादशी के दिन जेजाली में आएंगे।

उसी दिन श्रेणिक आया। सुज्येष्ठा उसके साथ जाने के लिए तैयार होने लगी। इतने में उसकी छोटी बहिन चेलणा ने कहा—मेरी तुम्हारे साथ चलेगी और श्रेणिक के साथ विवाह करेगी। दोनों बहिन तैयार होकर सुरंग के मुँह पर आईं। वहाँ आकर सुज्येष्ठा बोली—मैं अपना रत्नों का पिटारा भूल आई हूँ। मैं उसे लेने जाती हूँ। मेरे आने तक तुम यहीं ठहरना। यह कह कर वह रत्नकरण्ड लाने जापिस चली गई। इतने में श्रेणिक वहाँ आ पहुँचा। वह सुलमा के बत्तीस पुत्रों के साथ वहाँ आया था। सुरंग के द्वार पर खड़ी हुई चेलणा को सुज्येष्ठा समझ कर श्रेणिक न उसे रथ पर बिठा लिया और शीघ्रता से राजगृही की ओर प्रस्थान कर दिया।

इतने में सुज्येष्ठा आई। सुरंग के द्वार पर किसी को न देख कर वह समझ गई कि चेलणा अकेली चली गई है। उसने चिल्लाना शुरू किया। चेडा महाराज को खबर पहुँची। पुत्री का हरण हुआ जान कर उन्होंने पीछा किया। सुलमा के पुत्रों ने चेडा राजा की सेना को मार्ग ही में रोक लिया। युद्ध शुरू हुआ। उस में सुलमा का एक पुत्र मारा गया। एक की मृत्यु से नाकी नचे हुए इकतीस पुत्रों की भी मृत्यु हो गई। श्रेणिक चेलणा को लेकर राजगृही के समीप पहुँचा। राजा न उसे सुज्येष्ठा के नाम से पुलाया तो चेलणा ने कहा—मैं सुज्येष्ठा नहीं हूँ। मैं तो उसकी छोटी बहिन चेलणा हूँ। राजा को अपनी भूल का पता लगा। बड़े समारोह के साथ श्रेणिक और चेलणा का विवाह हो गया।

सुलमा को अपने पुत्रों की मृत्यु का समाचार सुन कर बड़ा दुःख हुआ। वह विलाप करने लगी। एक साथ बत्तीस पुत्रों की

मृत्यु उमक लिए अमर हो गई। उम का रुदन सुन कर आम
पाग के लोग भी जोर करने लगे। उम नमर अमरकुमार नाम-
रधिक के घर आया और सुलमा को चिन्तना देने के लिए रुदन
लगा—सुलमा ! भर्मे पर तुम्हारी दृष्ट श्रद्धा है। तुम उमक गर्म को
पहिचानती हो। प्रविरही प्रकृष्ट के समान पिनाप करना तुम्हें शोभा
नहीं देना। यह नमर इन्द्रनाल के समान है। इन्द्रधनुष के समान
नथर है। हाथी के जाना के समान चपल है। मन्थरा राग के
समान अस्थिर है। रमलपत्र पर पड़ी हुई त्रुंड के समान चणिक है।
मृगवृष्णा के समान मिथ्या है। यहाँ जो आया है वह अस्थाय
जायगा। नष्ट होने वाली वस्तु के लिए शोक करना घृथा है।
अमरकुमार ने इस प्रकार के वचनों से सुन कर सुलमा और
नाग रधिक का शोक कुछ कम हो गया। संसार की पिचिन्ता
को समझ कर उन्होंने दुःख करना छोड़ दिया।

कुछ दिनों बाद भगवान् महावीर चम्पा नगरी में पधारे। नगरी
के बाहर देवों ने समवसरण की रचना की। भगवान् ने धर्मोपदेश
दिया। देशना के अन्त में अम्बड नाम का निवाधारी श्रावक खड़ा
हुआ। पिछा के जल में वह कई प्रकार के रूप पलट सकता था।
वह राजगृही का रहने वाला था। उसने कहा—प्रभो ! आपके उप-
देश में मेरा जन्म मफल होगया। अब मैं राजगृही जा रहा हूँ।

भगवान् ने फरमाया—राजगृही में सुलमा नाम वाली श्राविका
है। वह धर्म में परम दृढ़ है।

अम्बड ने मन में सोचा—सुलमा श्राविका उड़ी पुण्यशालिनी है,
जिसके लिए भगवान् स्वयं इस प्रकार कह रहे हैं। उसमें ऐसा कौन
सा गुण है जिसमें भगवान् ने उसे धर्म में दृढ़ बताया। मैं उसके सम्य-
क्त्व की परीक्षा करूँगा। यह सोच कर उसने परित्राजक (सन्यासी)
का रूप बनाया और सुलमा के घर जाकर कहा—यायुष्मति !

मुझे भोजन दो इसमें तुम्हें धर्म होगा। सुलसा ने उत्तर दिया—
जिन्हें देने में धर्म होता है, उन्हें मैं जानती हूँ।

उहाँ से लौट कर अम्बड ने आकाश में पद्मामन रचा और उस पर बैठ कर लोगों को आश्चर्य में डालने लगा। लोग उसे भोजन के लिए निमन्त्रित करने लगे किन्तु उसने किसी का निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया। लोगों ने पूछा—भगवान्! ऐसा कौन भाग्यशाली है जिसके घर का भोजन ग्रहण करके आप पायणा करेंगे।

अम्बड ने कहा—मैं सुलसा के घर का आहार पानी ग्रहण करूँगा।

लोग सुलसा को बधाई देने आए। उन्होंने कहा—सुलसे! तुम उड़ी भाग्यशालिनी हो। तुम्हारे घर भूखा सन्ध्यामी भोजन करेगा।
सुलसा ने उत्तर दिया— मैं इसे ढोंग मानती हूँ।

लोगों ने यह बात अम्बड से कही। अम्बड ने समझ लिया—सुलसा परम सम्यग्दृष्टि है जिससे महान् अतिशय देखने पर भी वह श्रद्धा में डोँयाडोल नहीं हुई।

इसके बाद अम्बड श्रावक ने जैन मुनि का रूप बनाया। 'शिमीहि शिमीहि' के साथ नमुक्कार मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसने सुलसा के घर में प्रवेश किया। सुलसा ने मुनि जान कर उसका उचित मत्कार किया। अम्बड श्रावक ने अपना अमली रूप बता कर सुलसा की बहुत प्रशंसा की। उसे भगवान् महावीर द्वारा की हुई प्रशंसा की बात कही। उसके बाद वह अपने घर चला गया।

सम्यक्त्व में दृढ़ होने के कारण सुलसा ने तीर्थङ्कर गोत्र पोंधा। आगामी चौथीमी में उसका जीव पन्द्रहवें तीर्थङ्कर के रूप में उत्पन्न होगा और उसी भव में मोक्ष जायगा।

(ठा ६ उ ३ मूत्र ६६१ टीका) (हरि श्राव नि गा १२८४)

(९) सीता

भरतक्षेत्र में मिथिला नाम की नगरी थी। वहाँ हरिचशी राजा वासुकी का पुत्र राजा जनक राज्य करता था। उसका दूसरा नाम विदेह था। रानी का नाम विदेहा था। राजा न्याय नीतिपरायण था। प्रजा का पुत्रवत् पालन करता था अतः प्रजा भी उसे बहुत मानती थी।

रानी विदेहा में राजरानी के योग्य सब ही गुण विद्यमान थे। सुख पूर्वक समय प्रतापी हुई रानी एक समय गर्भवती हुई। समय पूरा होने पर रानी की कुक्षि में एक युगल, अर्थात् एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुआ। इसमें राजा, रानी और प्रजा को बहुत ही प्रसन्नता हुई।

इसी समय सौधर्म देवलोक का पिंगल नाम का देव अवधि-ज्ञान से अपना पूर्वभ्रम देख रहा था। रानी विदेहा की कुक्षि में उत्पन्न होने वाले युगल सन्तान में से पुत्र रूप में उत्पन्न होने वाले जीव के साथ उसे अपने पूर्व भ्रम के वैर का स्मरण हो आया। अपने वैर का बदला लेने के लिये वह शीघ्र ही रानी के प्रसूति गृह में आया और वहाँ से बालक को उठा कर चल दिया। वह उसे मार डालना चाहता था किन्तु बालक की सुन्दर आकृति देख कर उसे उस पर दया आ गई। इससे उसे वैताढ्य पर्वत पर ले जाकर एक वन में सुनसान जगह पर रख दिया। इस प्रकार अपने वैर का बदला चुका हुआ मान कर वह वापिस अपने स्थान पर लौट आया।

वैताढ्य पर्वत पर रथनूपुर नाम का नगर था। वहाँ पर चन्द्रगति नाम का विद्याधर राज्य करता था। वनक्रीड़ा करता हुआ वह उधर निकल आया। एक सुन्दर बालक को पृथ्वी पर पड़ा

देख कर उमे आश्चर्य और प्रसन्नता दोनों हुए। उमने तत्काल बालक को उठा लिया और अपने महल की ओर रवाना हुआ। घर आकर उसने वह बालक रानी को दे दिया। उसके कोई सन्तान नहीं थी इस लिए ऐसे सुन्दर बालक को प्राप्त कर उसे बहुत खुशी हुई। बालक की प्राप्ति के विषय में राजा और रानी के सिवाय किसी को कुछ भी मालूम न था इस लिये उन दोनों ने विचार किया कि इसे अपना निजी पुत्र होना जाहिर करके धूमधाम से इसका जन्मोत्सव मनाना चाहिए। ऐसा विचार कर राजा ने अपने परिजनो में तथा शहर में यह घोषणा करा दी कि रानी सगर्भा थी किन्तु कई कारणों से यह बात अब तक गुप्त रखी गई थी। आज रानी की कुक्षि से एक पुत्ररत्न का जन्म हुआ है। इस घोषणा को सुन कर प्रजा में आनन्द छा गया। विविध प्रकार से खुशियाँ मनाई जाने लगी। पुत्र जन्मोत्सव मना कर राजा ने पुत्र का नाम भामण्डल रखा। सुखपूर्वक लालन पालन होने से वह द्वितीया के चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगा। क्रमशः बढ़ता हुआ बालक यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ। अब राजा चन्द्रगति को उसके अनुरूप योग्य कन्या खोजने की चिन्ता हुई।

अपने यहाँ पुत्र तथा पुत्री के उत्पन्न होने की शुभ सूचना एक दासी द्वारा प्राप्त करके राजा जनक खुश हो ही रहे थे इतने ही में पुत्र-हरण की दुःखद घटना घटी। दूसरी दासी द्वारा इस खबर को सुन कर राजा की खुशी चिन्ता में परिणत हो गई। उनके हृदय को भारी चोट पहुँची जिससे वे मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। प्रजा में भी अत्यन्त शोक छा गया। शीतल उपचार करने पर राजा की मूर्च्छा दूर हुई। पुत्री को ही पुत्र मान कर उन्होंने संतोष किया। जन्मोत्सव मना कर पुत्री का नाम मीता रखा। पाँच धायों द्वारा लालन पालन की जाती हुई सीता सुरचित बेल की तरह बढ़ने लगी।

योग्य वय होने पर स्त्री की चौसठ कलाओं में वह प्रवीण हो गई। अतः राजा विदेह को उसके योग्य वर खोजने की चिन्ता हुई। वर में नीचे लिखी बातें अवश्य देखनी चाहियें—

कुल च गील च मनाथता च, विद्या च वित्त च वपुर्नयश्च ।

वरे गुणाः सप्त विलोकनीयास्ततः परं भाग्यवशा हि कन्या ॥

अर्थात्—कुल (स्वभाव और आचरण), मनाथता (माता-पिता एवं भाई-आदि परिवार), विद्या, धन, शरीर (स्वास्थ्य आदि) वय (वयस्) ये मातृ-घातों वर के अन्दर देख कर ही कन्या देनी चाहिए। उसके बाद कन्या अपने भाग्याधीन है।

वैताढ्य पर्वत के दक्षिण में अर्द्धवर्षर नाम का एक देश था। वहाँ अन्तरंग नाम का एक म्लेच्छराजा राज्य करता था। उसके बहुत से पुत्र थे। एक समय ने उड़ी भारी सेना लेकर मिथिला पर चढ़ आये और नाना प्रकार से उपद्रव करने लगे। राजा विदेह की सेना थोड़ी होने के कारण वह उनके उपद्रव रोकने में असमर्थ थी। उनकी सेना बार-बार परास्त होती थी। यह देख कर राजा विदेह बहुत घमराया। सहायता के लिए अपने मित्र राजा दशरथ के पास उमने एक दूत भेजा। दूत की बात सुन कर राजा दशरथ अपने मित्र राजा विदेह की सहायता के लिए सेनासहित मिथिला जाने को तैयार हुए। उन्ही समय राम और लक्ष्मण आकर उनके सामने उपस्थित हुए और विनय पूर्वक अर्ज करने लगे कि हे पूज्य ! आपकी वृद्धावस्था है। अतः हम लोगों को ही मिथिला जाने की आज्ञा दीजिये। पुत्रों का विशेष आग्रह देख कर राजा दशरथ ने उन्हें मिथिला की ओर विदा किया। वहाँ पहुँच कर राम और लक्ष्मण ने ऐसा पराक्रम दिखलाया कि म्लेच्छ राजा की सेना भाग गई। राजा विदेह और मिथिलावासी जनों को शान्ति मिली, वे निरुपद्रव

उनका अद्भुत पराक्रम देख

कर राजा विदेह को बहुत प्रसन्नता हुई । उनका उचित सत्कार करके उन्हें श्रयोध्या की ओर विदा किया ।

सीता का दूमरा नाम जानकी था । वह परमसुन्दरी एवं रूपवती थी । उसके रूप लावण्य की प्रशंसा चारों ओर फैल चुकी थी । एक समय नारद मुनि उसे देखने के लिये मिथिला में आये । राजमहल में आकर वे सीधे वहाँ पहुँचे जहाँ जानकी अपनी मरियों के साथ खेल रही थी । नारद मुनि के विचित्र रूप को देख कर जानकी डर कर भागने लगी, दासियों ने शोर किया जिससे राजपुरुष वहाँ पहुँचे और नारद मुनि को पकड़ कर अपमान पूर्वक महल से बाहर निकाल दिया । नारद मुनि को बड़ा क्रोध आया । वे इस अपमान का बदला लेने का उपाय सोचने लगे । सीता का एक चित्र बना कर वे वैताढ्य गिरि पर विद्याधरकुमार भामण्डल के पास पहुँचे । भामण्डल को वह चित्रपट दिखाकर सीता को हर लाने के लिये नारदमुनि उसे उत्साहित कर वहाँ से चले गये । चित्रपट देख कर भामण्डल सीता पर मुग्ध होगया । उसकी प्राप्ति के लिये वह रात दिन चिन्तित रहने लगा । राजपुत्र की चिन्ता और उदासीनता का कारण मालूम करके चन्द्रगति ने एक दूत जनक के पास भेजा और अपने पुत्र भामण्डल के लिये सीता की मागणी की । दूत की बात सुन कर राजा जनक ने उत्तर दिया कि— मैंने अपनी प्यारी पुत्री सीता का स्वयंवर द्वारा विवाह करने का निश्चय किया है । स्वयंवर में सब राजाओं को निमन्त्रण दिया जायगा । मेरी प्रतिज्ञा के अनुसार देवाधिष्ठित यज्ञार्त नाम का धनुष वहाँ रखा जायगा । जो धनुष पर बाण चढ़ाने में समर्थ होगा उसी के साथ सीता का पाणिग्रहण होगा । दूत ने वैताढ्य गिरि पर आकर सारी बात चन्द्रगति को कह सुनाई । राजा ने भामण्डल को आश्वासन दिया और सीता के स्वयंवर की प्रतीक्षा करने लगा ।

दूत के लौट जाने पर राजा जनक ने बहुत कुशल कारीगरों को बुला कर सुन्दर स्वयंवर मण्डप बनाने की आज्ञा दी। तत्पश्चात् राजा ने विभिन्न देशों के राजाओं के पास स्वयंवर का निमन्त्रण भेजा। निश्चित तिथि पर अनेक राजा और राजकुमार स्वयंवर मण्डप में उपस्थित हुए। राजा दशरथ राम, लक्ष्मण आदि अपने पुत्रों के साथ और विद्यार चन्द्रगति अपने पुत्र भामण्डल के साथ वहाँ आए। सभी राजाओं के यथायोग्य आसन पर बैठ जाने के पश्चात् राजा जनक ने धनुष की ओर संकेत करके मन राजाओं को अपनी प्रतिज्ञा कह सुनाई। इसी समय एक प्रतिहारी के साथ सुन्दर पस्त्राभूषणों में अलंकृत मीता स्वयंवर मण्डप में आई। उम के अद्भुत रूप लक्षण को देख कर उपस्थित सभी राजा और राजकुमार उसकी प्राप्ति के लिए अपने अपने इष्टदेव का ध्यान करने लगे।

राजा जनक की प्रतिज्ञा सुन कर बैठे हुए राजकुमारों में से प्रत्येक धारी बागी ने धनुष के पाम आकर अपना बल अजमाने लगे किन्तु धनुष पर बाण चढ़ाना तो दूर रहा, उम धनुष को हिलाने में भी समर्थ न हुए। जो राजकुमार बड़े गर्व के साथ अक्रुड कर धनुष के पास आते थे अमफल होजाने पर वे लज्जा में सिर नीचा करके वापिस अपने आसन पर जा बैठते थे। राजकुमारों की यह दशा देख कर राजा जनक के हृदय में चिन्ता उत्पन्न हुई। वह मोचने लगा—'क्या क्षत्रिया का बल पराक्रम पूरा हो चुका है? क्या मेरी प्रतिज्ञा पूरी न होगी? क्या मीता का विवाह न हो सकेगा? उसके हृदय में इस प्रकार के सख्य विकल्प उठ रहे थे। इतने ही में काकुत्स्थकुलदीपक दशरथनन्दन राम अपने आसन से उठे। धनुष के पास आकर अनायाम ही उन्होंने धनुष को उठा कर बाण चढ़ा दिया। यह देख कर राजा जनक की प्रसन्नता

सीमा न रही। उनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। सीता ने परम हर्ष के साथ अपने भाग्य की सराहना करते हुए राम के गले में वरमाला डाल दी।

राजा जनक और राजा दशरथ पहले से मित्र थे। अब उनकी मित्रता और भी गहरी हो गई। राजा जनक ने विधिपूर्वक सीता का विवाह राम के साथ कर दिया। राजा दशरथ अपने पुत्रों और पुत्रवधू को साथ लेकर सानन्द अयोध्या लौट आए और सुख पूर्वक समय बिताने लगे।

स्वयंवर में आए हुए दूसरे राजा लोग निराश होकर अपने अपने नगर को वापिस लौटे। विद्याधरकुमार भामण्डल को अत्यधिक निराशा हुई। सीता की प्राप्ति न होने से वह रात दिन चिन्तित एवं उदास रहने लगा।

एक समय चार ज्ञान के धारक एक मुनिराज अयोध्या में पधारे। राजा दशरथ अपने परिवार सहित धर्मोपदेश सुनने के लिए गया। भामण्डल को साथ लेकर आकाशमार्ग से गमन करता हुआ चन्द्रगति भी उधर से निकला। मुनिराज को देख कर वह नीचे उतर आया। भक्तिपूर्वक उन्दना नमस्कार कर वह वहाँ बैठ गया। 'भामण्डल अब भी सीता की अभिलाषा से संतप्त हो रहा है' यह बात अपने ज्ञान द्वारा जान कर मुनिराज ने समयोचित देशना दी। प्रसन्न चन्द्रगति और उमकी रानी पुष्पवती के तथा भामण्डल और सीता के पूर्वभव कह सुनाये। उसी में भामण्डल और सीता का इस भव में एक साथ जन्म लेना और तत्काल पूर्वभव के वैरी एक देव द्वारा भामण्डल का हरा जाना आदि सारा वृत्तान्त भी कह सुनाया। इसे सुन कर भामण्डल को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। मूर्च्छित होकर वह उसी क्षण भूमि पर गिर पड़ा। थोड़ी देर बाद उसकी मूर्च्छा दूर हुई। जिस तरह मुनिराज ने कहा था

उसने अपने पूर्वभव का सारा वृत्तान्त जान लिया।

सीता को अपनी पहिन समझ कर उसने उसे प्रणाम किया। जन्म से मिछुडे हुए अपने भाई को प्राप्त कर सीता को भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई। चन्द्रगति ने दूत भेजकर राजा जनक और उसकी रानी विदेहा को भी बुलवाया और जन्मते ही जिसका हृण्य हो गया था वह यह भामण्डल तुम्हारा पुत्र है आदि सारा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। यह सुन कर उन्हें परम हर्ष हुआ और भामण्डल को अपना पुत्र समझ कर छाती से लगा लिया। अपने वास्तविक मातापिता को पहिचान कर भामण्डल को भी बहुत प्रसन्नता हुई। उसने उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। अपना पूर्वभव सुन कर चन्द्रगति को वैराग्य उत्पन्न होगया। भामण्डल को राजसिंहासन पर बिठा कर दीक्षा अङ्गीकार कर ली।

राजा दशरथ ने भी मुनिराज से अपने पूर्वभव के विषय में पूछा। अपने पूर्वभव का वृत्तान्त सुन कर राजा दशरथ को भी वैराग्य उत्पन्न होगया। उन्होंने भी अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को राज्य देकर दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया।

राम के राज्याभिषेक की तैयारी होने लगी। रानी कैकयी की दासी मन्यरा से यह सहन नहीं हो सका। उसने कैकयी को उकसाया और संग्राम के समय राजा दशरथ द्वारा दिये गये दो वर मागने के लिये प्रेरित किया। दाम्नी की बातों में आकर कैकयी ने राजा से दो वर माँगे— मेरे पुत्र भरत को राजगद्दी मिले और राम को चौदह वर्ष का वनवास। अपने वचन का पालन करने के लिए राजा ने उसके दोनों वरदान स्वीकार किये। पिता की आज्ञा से राम वन जाने के लिये तैयार हुए। जब यह बात सीता को मालूम हुई तो वह भी राम के साथ वन जाने को तैयार हो गई। रानी कौशल्या के पास जाकर वन जाने की अनुमति माँगने लगी। कौशल्या ने कहा— पुत्रि 'राम पिता की आज्ञा से वन जा रहा

हैं। वह वीर पुरुष है। उसके लिये कुछ कठिन नहीं है किन्तु तू बहुत कोमलाङ्गी है। तू मदा महलों में रही है। वन में शीत ताप आदि के तथा पैदल चलने के कष्ट को कैसे सहन कर सकेगी ? सीता ने कहा—माताजी ! आपका कहना ठीक है किन्तु आपका आशीर्वाद मेरी मन कठिनाइयों को दूर करेगा। जिस प्रकार रोहिणी चन्द्रमा का, विजली मेघ का और छाया पुरुष का अनुसरण करती है उसी प्रकार पतिव्रता स्त्रियों को अपने पति का अनुसरण करना चाहिए। पति के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी रहना उनका परम धर्म है। इस प्रकार प्रिय पूर्वक निवेदन कर सीता ने कौशल्या से वन जाने की आज्ञा प्राप्त कर ली।

राम की वन जाने की बात सुन कर लक्ष्मण एकदम कुपित हो गया। वह कहने लगा कि मेरे रहते हुए राम के राजगद्दी के हक को कौन छीन सकता है ? पिताजी तो मरल प्रकृति के हैं किन्तु स्त्रियाँ स्वभावतः कुटिल हुआ करती हैं। अन्यथा कैकयी अपना वरदान इस समय क्यों माँगती ? मैं राम को वन में न जाने दूँगा। मैं उन्हें राजगद्दी पर बिठाऊँगा। ऐसा मोच कर लक्ष्मण राम के पास आया। राम ने समझा कर उसके क्रोध शान्त किया। वह भी राम के साथ वन जाने को तैयार हो गया। तत्पश्चात् सीता और लक्ष्मण सहित राम वन की ओर रवाना हो गए।

एक समय एक मधन वन में एक भोपड़ी बना कर सीता, लक्ष्मण और राम ठहरे हुए थे। सीता के अद्भुत रूपलाभ्य की शोभा सुन कर कामातुर बना हुआ रावण सन्यासी का वेष बना कर वहाँ आया। राम और लक्ष्मण के बाहर चले जाने पर वह भोपड़ी के पास आया और भिक्षा माँगने लगा। भिक्षा देने के लिये जब सीता बाहर निकली तो रावण ने उसे पकड़ लिया और अपने ४५५५ विमान में बिठा कर लूटा ले गया। वहाँ ले जाकर सीता को

अशोक नाटिका में रख दिया। अब कामी रावण सीता को अनेक तरह के प्रलोभन देकर उसे अपने जाल में फँसाने की चेष्टा करने लगा। हे देवि ! तुम प्रमत्त होकर मुझे स्वीकार करो। मैं तुम्हारा दास बन कर रहूँगा। मैं तुम्हें अपनी पटरानी बना कर रखूँगा। तुम्हारी आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं करूँगा। किसी स्त्री पर बलात्कार न करने का मेरे नियम लिया हुआ है। अतः हे देवि ! तू मुझे प्रमत्ततापूर्वक स्वीकार कर। सीता ने रावण के शब्दों पर कुछ भी ध्यान न दिया। वह तो अपने मन में 'राम राम' की रट लगा रही थी। जब रावण ने देखा कि सीता पर उसके बताये गये प्रलोभनों का कुछ भी अमर नहीं हो रहा है तब वह उसे अपनी तलवार का डर दिखाने लगा। सीता डरने वाली न थी। उसने निर्भीक होकर जवाब दिया कि हे रावण ! तू अपनी तलवार का डर किसे जता रहा है ? मुझे अपना पतिव्रत धर्म प्राणों से भी प्यारा है। अपने सतीत्व की रक्षा के लिये मैं हँसते हँसते अपने प्राण न्योछावर कर सकती हूँ। जिस प्रकार जीवित सिंह की मूँछों के बाल उखाड़ना और जीवित शेषनाग के मस्तक की मणि को प्राप्त करना असम्भव है उसी प्रकार मतियों के सतीत्व का अपहरण करना भी असम्भव है।

रावण ने साम, दाम, दण्ड और भेद इन चारों नीतियों का प्रयोग सीता पर कर लिया किन्तु उसकी एक भी युक्ति सफल न हुई। सीता को अपने सतीत्व में मेरु के समान निश्चल एवं दृढ़ समझ कर रावण निराश हो गया। वह वापिस अपने महल को लौट गया किन्तु वह कामाग्नि में दग्ध होने लगा। अपने पति की यह दशा देख कर मन्दोदरी को बहुत दुःख हुआ। वह कहने लगी—हे स्वामिन् ! सीता का हरण करके आपने बहुत अनुचित कार्य किया है। आप सरीखे उत्तम पुरुषों को यह

शोभा नहीं देता। सीता महामती है। वह मन से भी परपुरुष की ईच्छा नहीं करती। सतियों को कष्ट देना ठीक नहीं है। अतः आप इस दुष्ट वासना को हृदय से निकाल दीजिए और शीघ्र ही सीता को वापिस राम के पास पहुँचा दीजिए। रावण के छोटे भाई विभीषण ने भी रावण को बहुत कुछ समझाया किन्तु रावण तो कामान्धवना हुआ था। उसने किसी की बात पर ध्यान न दिया।

राम लक्ष्मण जब वापिस लौट कर भोंपड़ी पर आये तो उन्होंने वहाँ सीता को न देखा, इससे उन्हें बहुत दुःख हुआ। वे ड़घर उधर सीता की खोज करने लगे किन्तु सीता का कहीं पता न लगा। सीता की खोज में घूमते हुए राम लक्ष्मण की सुग्रीव से भेट हो गई। सीता की खोज के लिये सुग्रीव ने भी चारों दिशाओं में अपने दूत भेजे। हनुमान् द्वारा सीता की खबर पाकर राम, लक्ष्मण और सुग्रीव बहुत बड़ी सेना लेकर लका को गये। अपनी सेना को सज्जित कर रावण भी युद्ध के लिये तैयार हुआ। दोनों तरफ की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। कई वीर योद्धा मारे गये। अन्त में वासुदेव लक्ष्मण द्वारा प्रतिवासुदेव रावण मारा गया। राम की विजय हुई। सीता को लेकर राम और लक्ष्मण अयोध्या को लौटे। माता कौशल्या, सुमित्रा और कंकयी को तथा भरत को और सभी नगर निवासियों को बड़ी प्रसन्नता हुई। सभी ने मिल कर राम का राज्याभिषेक किया। न्याय नीतिपूर्वक प्रजा का पुनर्वत् पालन करते हुए राजा राम सुखपूर्वक दिन बिताने लगे।

एक समय रात्रि के अन्तिम भाग में सीता ने एक शुभ स्वप्न देखा। उसने अपना स्वप्न राम से कहा। स्वप्न सुन कर राम ने कहा— देवि ! तुम्हारी कृति से किसी वीरपुत्र का जन्म होगा। सीता यतना पूर्वक अपने गर्भ का पालन करने लगी।

सीता के सिवाय राम के प्रभावती, रतिनिभा और श्रीदामा

नाम की तीन रानियाँ और थीं। सीता को सगर्भा जान कर उनके मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वे उस पर कोई कलंक चढ़ाना चाहती थीं। अतः रातदिन उसका छिद्र ढूँढने लगीं। एक दिन कपटपूर्वक उन्होंने सीता से पूछा कि सरि ! तुम लका में बहुत समय तक रही थी और रावण को भी देखा था। हमें भी बताओ कि रावण का रूप कैसा था ? सीता की प्रकृति सरल थी। उसने कहा— बहिनो ! मैंने रावण का रूप नहीं देखा किन्तु कभी कभी मुझे डराने धमकाने के लिए वह अशोक वाटिका में आया करता था इसलिए उसके केवल पैर मैंने देखे हैं। सौतों ने कहा— अच्छा, उसके पैर ही चित्रित करके हमें दिखाओ। उन्हें देखने की हमें बहुत इच्छा हो रही है। सरल प्रकृति वाली सीता उनके कपटभाष को न जात सकी। सरल भाव से उसने रावण के दोनों पैर चित्रित कर दिये। सौतों ने उन्हें अपने पाम रख लिया। अब वे अपनी इच्छा को पूरी करने का उचित अवसर देखने लगीं। एक समय राम अकेले बैठे हुए थे। तब सब सौतें मिल कर उनके पाम गईं। चित्र दिखा कर वे कहने लगीं— स्वामिन् ! जिस सीता को आप पतिव्रता और भती कहते हैं उसके चरित्र पर जरा गौर कीजिए। वह अब भी रावण की ही इच्छा करती है। वह नित्यप्रति इन चरणों के दर्शन करती है। सौतों की बात सुन कर राम विचार में पड़ गये, किन्तु किसी अनबन के कारण सौतों ने यह बात बनाई होगी। यह सोच कर राम ने उनकी बातों की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। अपना प्रयास असफल होते देख सौतों की ईर्ष्या और भी बढ़ गई। उन्होंने अपनी दामियाँ द्वारा लोगों में धीरे धीरे यह बात फैलाती शुरू की। इससे लोग भी अब सीता को सकलक समझने लगे। एक दिन रात्रि के समय राम सादा घेप पहन कर लोगों का दुःख जानने के लिये

घूमते हुए वे एक घोषी

के पास जा पहुँचे। धोनिन रात में देरी से आई थी। वह ढगवाजा खटखटा रही थी। धोनी उमे बुरी तरह से डाट रहा था और रुह रहा था कि मैं राम थोड़ा ही हूँ जिन्होंने रावण के पाम रही हुई सीता को वापिस अपने घर में रख लिया। धोवी के इन शब्दों ने राम के हृदय को भेद डाला। उन्होंने सीता को त्यागने का निश्चय कर लिया।

दूसरे दिन राम ने सारी हकीकत लक्ष्मण से कही। लक्ष्मण ने कहा पूज्य भ्राता ! आप यह क्या कह रहे हैं ? सीता शुद्ध हैं। वह महासती हैं। उसके विषय में किसी प्रकार की भी शङ्का न करनी चाहिए। राम ने कहा—तुम्हारा कहना ठीक है किन्तु लोकापवाद से रघु-कुल का निर्मल यश मलिन होता है। मैं इसे सहन नहीं कर सकता।

दूसरे दिन प्रातःकाल राम ने सीता को वन के दृश्य देखने रूप दोहद को पूरा करने के बहाने से रथ में बैठा कर जंगल में भेज दिया। एक भयंकर जंगल के अन्दर ले जाकर सारथी ने सीता से सारी हकीकत कही। सुनते ही सीता मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी। शीतल पवन से कुछ देर बाद उसकी मूर्च्छा दूर हुई। सीता की यह दशा देख कर सारथी बहुत दुखी हुआ किन्तु वह विवश था। सीता को वहाँ छोड़ कर वह वापिस अयोध्या लौट आया। सीता अपने मन में सोच रही थी कि मैंने ऐसा कौन सा अशुभ कार्य किया या किसी पर भूठा कलंक चढ़ाया है जिसके परिणाम स्वरूप इस जन्म में मुझ पर यह भूठा कलंक लगा है।

पुण्डरीकपुर का स्वामी राजा वज्रजंघ अपने मंत्रियों सहित उस वन में हाथी पकड़ने के लिये आया था। अपना कार्य करके वापिस लौटते हुए उसने विलाप करती हुई सीता को देखा। नजदीक जाकर उसने सीता से उसके दुःख का कारण पूछा। प्रधानमन्त्री ने राजा का परिचय देते हुए कहा—हे सुभगे ! ये पुण्डरीकपुर के राजा वज्रजंघ हैं। ये परनारी के सहोदर परमेश्वर हैं। तुम

अपना वृत्तान्त इनमें कहो। ये अवश्य तुम्हारा दुःख दूर करेंगे।

मंत्री के कथन पर विश्वास करके सीता ने अपना सारा वृत्तान्त कद सुनाया। राजा कहने लगा— हे आर्ये ! एक धर्म वाले परस्पर बन्धु होते हैं। इसलिए तुम मेरी धर्म बहिन हो। तुम मुझे अपना भाई समझ कर मेरे घर को पावन करो और धर्म ध्यान करती हुई सुख पूर्वक अपना समय बिताओ। वज्रजंघ का शुद्ध हृदय जान कर सीता ने पुण्डरीकपुर में जाना स्वीकार कर लिया। राजा वज्रजंघ सीता को पालकी में बैठा कर अपने नगर में ले आया। सीता विधिवत् अपने गर्भ का पालन करने लगी।

समय पूरा होने पर सीता ने एक पुत्र युगल को जन्म दिया। राजा वज्रजंघ ने दोनों पुत्रों का जन्मोत्सव मनाया। उनमें से एक का नाम लव और दूसरे का नाम कुश रखा। दोनों राजकुमार आनन्दपूर्वक उदने लगे। योग्य उम्र होने पर उन दोनों को शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा दिलाई गई। यौवन अवस्था प्राप्त होने पर राजा वज्रजंघ ने दूसरी उत्तीस राजकन्याओं का और अपनी पुत्री शशि कला का विवाह लव के साथ कर दिया। कुश के लिए राजा वज्रजंघ ने पृथ्वीपुर के राजा पृथुराज से उसकी कन्या की मागणी की किन्तु लव, कुश के वंश की अज्ञात बता कर पृथुराज ने अपनी कन्या देने से इनकार कर दिया। राजा वज्रजंघ ने इसे अपना अपमान समझा। राजा वज्रजंघ ने लव कुश को साथ लेकर पृथुराज के नगर पर चढ़ाई कर दी। उसकी प्रबल सेना के सामने पृथुराज की सेना न टिक सकी। परास्त होकर वह मैदान छोड़ कर भाग गई। पृथुराज भी अपने प्राण बचाने के लिए भागने लगा किन्तु लव, कुश ने उसे चारों ओर से घेर लिया। कुश ने कहा—राजन् ! आप सरीखे उत्तम कुल वंश वाले हम जैसे कुल वंश वालों के सामने से अपने प्राण बचा कर

शोभा नहीं देते। जरा मैदान में खड़े रह कर हमारा पराक्रम तो देखो जिसमें हमारे कुल वंश का पता चल जाय। कुश के ये मर्मकारी वचन सुन कर पृथुराज का अभिमान चूरचूर हो गया। वह मन में सोचने लगा—इन दोनों वीरों का पराक्रम ही इनके उत्तम कुल वंश का परिचय दे रहा है। ये अवश्य ही किसी वीर, क्षत्रिय की मन्तान है। इन्हें अपनी कन्या देने में मेरा गौरव ही है। ऐसा सोच कर पृथुराज ने राजा वज्रजघ से सुलह करके अपनी कन्या का विवाह कुश के साथ कर दिया। इसी समय नारद मुनि वहाँ आ पहुँचे। राजा वज्रजघ के प्रार्थना करने पर नारद मुनि ने लव और कुश के कुल वंश का परिचय दिया, जिससे पृथुराज को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह अपने आप को सौभाग्यशाली मानने लगा।

इसके बाद राजा वज्रजघ लव और कुश के साथ अनेक नगरों पर विजय करता हुआ पुण्डरीकपुर लौट आया।

सती माध्वी मीता पर कलक चढ़ाना, गर्भवती अवस्था में निष्कारण उसे भयङ्कर वन में छोड़ देना आदि सारा घृत्तान्त नारदजी द्वारा जान कर लव और कुश राम पर अति कुपित हुए। राजा वज्रजघ की सेना को साथ में लेकर लव और कुश ने अयोध्या पर चढ़ाई कर दी। इसे अचानक चढ़ाई से राम लक्ष्मण को अति विस्मय हुआ। वे सोचने लगे कि यह कौन शत्रु है और इस आकस्मिक आक्रमण का क्या कारण है? आखिर अपनी मेना को लेकर वे भी मैदान में आए। घमासान युद्ध शुरू हुआ। लव कुश के राणप्रहार में परास्त होकर राम की मेना अपने प्राण लेकर भागने लगी। अपनी मेना की यह दशा देख कर वे विस्मय के साथ विचार में पड़ गए कि हमारी सेना ने आज तक अनेक युद्ध किये। सर्वत्र विजय हुई किन्तु ऐसी दशा कभी नहीं हुई। क्या 'उपार्जन' की हुई कीर्ति पर आज धेच्चा लग जायेगा? कुछ भी हो

हमें वीरता पूर्वक शत्रु का मुकाबला करना ही चाहिए। ऐसा
 मोन कर लक्ष्मण धनुष बाण लेकर आगे बढ़ा। उसके आते हुए
 बाणों को लव और कुश बीच में ही काट देने थे। शत्रु पर फेंक मर
 शत्रुओं को निष्फल जाने देग कर लक्ष्मण अति क्रुपित हुए।
 विजय का कोई उपाय न देख कर शत्रु का मिर काट कर लाने
 के लिए उन्होंने चक्र चलाया। लव कुश के पास आकर उन
 दोनों भाइयों की प्रहचिणा देकर चक्र बापिम लौट आया। अर
 तो राम लक्ष्मण की निराशा का ठिकाना न रहा। वे दोनों
 उदाम होकर बैठ गये और मोचने लगे कि मालूम होता है कि
 ये कोई नये बलदेव और घासुदेव प्रकट हुए हैं।

उसी समय नारद मुनि वहाँ आ पहुँचे। राम लक्ष्मण को
 उदाम बैठे देख कर वे हँस कर कहने लगे— हर्षित होने के बदले
 आज आप उदाम होकर कैसे बैठे हैं? अपने शिष्य और पुत्र के
 सामने पराजित होना तो हर्ष की बात है। राम लक्ष्मण ने कहा—
 महाराज! हम आपकी बात का रहस्य कुछ भी नहीं समझ सकें।
 जरा स्पष्ट करके कहिये। नारदजी ने कहा ये लड़ने वाले दोनों
 वीर माता, सीता के पुत्र हैं। चक्र ने भी इस बात की सूचना
 दी है क्योंकि यह म्बगोत्री पर नहीं चलता।

नारदजी की बात सुन कर राम लक्ष्मण के हर्ष का पारावार
 न रहा। वे अपने वीर पुत्रों से भेट करने के लिए आतुरता
 पूर्वक उनकी तरफ चले। लव कुश के पास जाकर नारदजी ने
 यह सारा वृत्तान्त कहा। उन्होंने अपने अस्त्र शस्त्र नीचे डाल
 दिये और आगे बढ़ कर सामने आते हुए राम लक्ष्मण के चरणों
 में मिर नमाया। उन्होंने भी प्रेमालिङ्गन कर आशीर्वाद दिया।
 अपने वीर पुत्रों को देख कर उन्हें अति हर्ष हुआ। इसके बाद
 राम ने सीता को लाने की आज्ञा दी। सीता के पास जाकर

शोभा नहीं देते। जरा मैदान में खड़े रह कर हमारा पराक्रम तो देखो जिममे हमारे कुल वंश का पता चल जाय। कुश के ये मर्मकारी पचन सुन कर पृथुराज का अभिमान चूरचूर हो गया। वह मन में मोचने लगा—इन दोनों वीरों का पराक्रम ही इनके उत्तम कुल वंश का परिचय दे रहा है। ये अवश्य ही किसी वीर क्षत्रिय की मन्तान है। इन्हें अपनी कन्या देने में मेरा गौरव ही है। ऐसा सोच कर पृथुराज ने राजा वज्रजंघ से सुलह करके अपनी कन्या का विवाह कुश के साथ कर दिया। इसी समय नारद मुनि वहाँ आ पहुँचे। राजा वज्रजंघ के प्रार्थना करने पर नारद मुनि ने लव और कुश के कुल वंश का परिचय दिया, जिससे पृथुराज की बड़ी प्रसन्नता हुई। वह अपने आप को सौभाग्यशाली मानने लगा।

इसके बाद राजा वज्रजंघ लव और कुश के साथ अनेक नगरों पर विजय करता हुआ पुण्डरीकपुर लौट आया।

मती माध्वी मीता पर कलक चढ़ाना, गर्भवती अवस्था में निष्कारण उसे भयङ्कर वन में छोड़ देना आदि सारा वृत्तान्त नारदजी द्वारा जान कर लव और कुश राम पर अति कुपित हुए। राजा वज्रजंघ की सेना को साथ में लेकर लव और कुश ने अयोध्या पर चढ़ाई कर दी। इसे अचानक चढ़ाई में राम लक्ष्मण को अति विस्मय हुआ। वे सोचने लगे कि यह कौन शत्रु है और इस आकस्मिक आक्रमण का क्या कारण है? आखिर अपनी मेना को लेकर वे भी मैदान में आए। घमासान युद्ध शुरू हुआ। लव कुश के बाणप्रहार में परास्त होकर राम की मेना अपने प्राण लेकर भागने लगी। अपनी मेना की यह दशा देख कर वे विस्मय के साथ विचार में पड़ गए कि हमारी सेना ने आज तक अनेक युद्ध किये। मगत्र विजय हुई किन्तु ऐसी दशा कभी नहीं हुई। क्या

— 'की हुई कीर्ति' पर आन धेव्या लग जायेगा? कुछ भी हो

हमें वीरता पूर्वक शत्रु का मुकाबला करना ही चाहिए। ऐसा सोच कर लक्ष्मण धनुष बाण लेकर आगे बढ़ा। उनके आते हुए बाणों को लव और कुश बीच में ही काट देते थे। शत्रु पर फेंके सब शस्त्रों को निष्फल जाते देख कर लक्ष्मण अति कुपित हुए। विजय का कोई उपाय न देख कर शत्रु का मिर काट कर लाने के लिए उन्होंने चक्र चलाया। लव कुश के पाम आकर उन दोनों भाइयों की प्रदक्षिणा देकर चक्र वापिस लौट आया। अब तो राम लक्ष्मण की निराशा का ठिकाना न रहा। वे दोनों उदास होकर बैठ गये और सोचने लगे कि मालूम होता है कि ये कोई नये बलदेव और वासुदेव प्रकट हुए हैं।

उसी समय नारद मुनि वहाँ आ पहुँचे। राम लक्ष्मण को उदास बैठे देख कर वे हम् कर कहने लगे—हर्षित होन के बदले आज आप उदास होकर कैसे बैठे हे? अपने शिष्य और पुत्र के सामने पराजित होना तो हर्ष की बात है। राम लक्ष्मण ने कहा—महाराज! हम आपकी रात का रहस्य कुछ भी नहीं समझ सके। जरा स्पष्ट करके कहिये। नारदजी ने कहा ये लड़ने वाले दोनों वीर सीता सीता के पुत्र हैं। चक्र ने भी इस बात की सूचना दी है क्योंकि वह स्वर्गोत्री पर नहीं चलता।

नारदजी की बात सुन कर राम लक्ष्मण के हर्ष का पारावार न रहा। वे अपने वीर पुत्रों से भेंट करने के लिए आतुरता पूर्वक उनकी तरफ चले। लव कुश के पास जाकर नारदजी ने यह सारा वृत्तान्त कहा। उन्होंने अपने अस्त्र शस्त्र नीचे डाल दिये और आगे बढ़ कर सामने आते हुए राम लक्ष्मण के चरणों में सिर नमाया। उन्होंने भी प्रेमालिङ्गन कर आशीर्वाद दिया। अपने वीर पुत्रों को देख कर उन्हें अति हर्ष हुआ। राम ने सीता को लाने की आज्ञा दी। सीता के पाम

लक्ष्मण ने चरणों में नमस्कार किया और अयोध्या में चल कर उमे पावन करने की प्रार्थना की। सीता ने कहा— वत्स ! अयोध्या चलने में मुझे कोई ऐतराज नहीं है किन्तु 'जिम लोकापवाद मे डर कर राम ने मेरा त्याग किया था वह नो ज्यों का त्यों बना रहेगा। इसलिए मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि अपने मतीत्व की परीक्षा देकर ही मैं अयोध्या में प्रवेश करूँगी।

राम के पास आकर लक्ष्मण ने सीता की प्रतिज्ञा कह सुनाई। मती सीता को निष्कारण वन में छोड़ देने के कारण होने वाले पश्चात्ताप से राम पहले से ही खिन्न हो रहे थे। सीता की कठिन प्रतिज्ञा को सुन कर वे और भी अधिक खिन्न हुए। राम के पास अन्य कोई उपाय न था, वे विवश थे। उन्होंने एक अग्नि का कुण्ड बनवाया। इस दृश्य को देखने के लिए अनेक सुर नर वहाँ इकट्ठे हुए और उत्सुकता पूर्ण नेत्रों से सीता की ओर देखने लगे। अग्नि अपना प्रचण्ड रूप धारण कर चुकी थी। उसकी ओर आँखें उठा कर देखना भी लोगों के लिए कठिन हो गया। उस समय सीता अग्निकुण्ड के पास आकर खड़ी हो गई और उपस्थित देव और मनुष्यों के सामने अग्नि में कूदने लगी—

मनमि उचमि जाये जागरे स्वप्नमध्ये,

यदि मम पतिभावो राघवादन्यपु सि ।

तदिह दह शरीर पापक पावक ! त्व,

सुकृत निकृतकाना त्व हि भवत्र माक्षी ॥

अर्थान्— मन, उचन या जाया मे, जागते समय या स्वप्न मे, यदि रामचन्द्रजी को छोड़ कर किसी दूसरे पुरुष में मेरा पतिभाव हुआ हो, तो हे अग्नि ! तुम इस पापी शरीर को जला डालो। मन्त्राचार और दुराचार के लिए इस समय तुम्हीं माक्षी हो।

जैसा कह कर सीता उस अग्निकुण्ड में कूद पड़ी। तत्काल अग्नि

बुझ कर वह कुण्ड जल में भर गया। शीलरक्षक देवों ने जल में कमल पर सिंहासन बना दिया और मती सीता उस पर बैठी हुई दिखने लगी। यह दृश्य देख कर लोगों के हर्ष का ठिकाना न रहा। सती के जयनाद से आकाश गूँज उठा। देवताओं ने मती पर पुष्पनृष्टि की।

राम उपस्थित जनसमाज के सामने पश्चात्ताप करने लगे—मैंने सती साध्वी पत्नी को इतना कष्ट दिया। सत्यासत्य का निर्णय किए बिना केवल लोकापवाद से डर कर भयङ्कर वन में छोड़ कर मैंने उसे प्राणान्त कष्ट दिया। यह मेरा अविचारपूर्ण कार्य था। सती को कष्ट में डाल कर मैंने भारी पाप उपार्जन किया है। मैं इस पाप से कैसे छूटूँगा। इस प्रकार पश्चात्ताप में पड़े हुए अपने पति को देख कर सीता कहने लगी—नाथ ! आपका पश्चात्ताप करना व्यर्थ है। सोने को अग्नि में तपाने से उसकी कीमत बढ़ती है घटती नहीं। इसी प्रकार आपने मेरी प्रतीष्ठा बढ़ाई है। यदि यह सारा नाना न बना होता तो शील का माहात्म्य कैसे प्रकट होता ? इस लिए आपको पश्चात्ताप करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार पति पत्नी के सवाद को सुन कर सब लोग कहने लगे कि—सर्वत्र सत्य की जय होती है। सती सीता सत्य पर अटल थी। अनेक विपत्तियों आने पर भी वह शील में दृढ़ रही। इसी लिए आज उसकी सर्वत्र जय हो रही है।

उस समय चार ज्ञान के धारक एक मुनिराज वहाँ पधारे। सब लोगो ने विनयपूर्वक वन्दना की और धर्मोपदेश सुनने की इच्छा प्रकट की। विशेष लाभ समझ कर मुनिराज ने धर्मोपदेश करमाया। कितने ही सुलभशोधि जीवों ने वैराग्य प्राप्त कर दीक्षा अङ्गीकार की। सीता ने मुनिराज से पूछा—हे पूर्व जन्म में मैंने ऐसा कौन सा कार्य किया जिससे

यह कलक लगा ? कृपा करके कहिये ।

उपस्थित जनममाज के सामने मुनिराज ने कहना शुरू किया । भव्यों ! अपनी आत्मा का हित चाहने वाले पुरुषों को झूठ वचन, दोषारोपण, निन्दा और किसी की गुप्त बात को प्रकट करना इत्यादि अशुभों का सर्वथा त्याग करना चाहिये । किसी निर्दोष व्यक्ति पर झूठा कलक चढ़ाना तो अतिनिन्दनीय कार्य है । ऐसा व्यक्ति लोक में निन्दा का पात्र होता है और परलोक में अनेक कष्ट भोगता है । जो व्यक्ति शुद्ध संयम पालने वाले मुनिराज पर झूठा कलक लगाता है उस पर सती सीता की तरह झूठा कलक आता है । सीता के पूर्वभव की कथा इस प्रकार है—

भरतक्षेत्र में मृणालिनी नाम की नगरी थी । उस में श्रीभूति नाम का एक प्रतिष्ठित पुरोहित रहता था । उसकी स्त्री का नाम सरस्वती था । उसके एक पुत्री थी । जिसका नाम वेगवती था ।

एक दिन अपनी सखियों के साथ खेलती हुई वेगवती नगरी से कुछ दूर जंगल की ओर निकल गई । आगे जाकर उसने देखा कि एक कृशकाय तपस्वी मुनिराज काउमग्न करके ध्यान में सड़के हैं । नगरी में इसकी खबर मलने से सैकड़ों नर नारी उनके दर्शन करने के लिए आ रहे हैं । यह देख कर वेगवती के हृदय में मुनि पर पूर्वभवन का पैर जागृत हो गया । वह दर्शनार्थ आने वाले लोगों से कहने लगी—ससार को छोड़ कर माधु का चप पहनने वाले भी कितने कपटी और ढोंगी होते हैं । भोले प्राणियों को ठगने के लिये वे क्या क्या दम्भ रचते हैं । पवित्र कर्मकाण्डी ब्राह्मणों की सेवा को छोड़ कर लोग भी ऐसे पाखण्डियों की ही सेवा करते हैं । मैंने अभी देखा था कि यह साधु एकान्त में एक स्त्री के साथ क्रीडा कर रहा था । इससे ध्यानस्थ मुनि का चित्त संतप्त हो उठा । वे विचारने लगे कि मैं निर्दोष हूँ इस लिए मुझे तो किसी प्रकार

का दुःख नहीं है किन्तु इसमें जैन गामन कलङ्कित होता है। इस लिए मेरे मित्र ने जब यह कलक उतरेगा तभी मेरे काउमर्य पार कर शून्य चल ग्रहण करूँगा। ऐसी कठोर प्रतिज्ञा करके मुनि ध्यान में विशेष दृढ़ बन गये।

गामनदंभी का गामन रुपित हुआ। उनमें अवधिवान द्वारा मुनि के भागों को जान लिया। वह तत्काल वहाँ आड़े और वेगवती के उदर में शूल रोग उत्पन्न कर दिया जिसमें उसे प्राणान्त स्पृष्ट होने लगा। वह उपस्थित जनममुदाय के मामने मुनि को लक्ष्य करके उच्च स्वर में कहने लगी—भगवन् ! आप सर्वथा निर्दोष हैं। मैंने आपके ऊपर मिथ्या दोष लगाया है। हे क्षमानिधे ! आप मेरे अपराध को क्षमा करें। अपना अभिग्रह पूरा हुआ जान कर मुनि ने काउमर्य पार लिया। जनता के आग्रह से मुनि ने धर्मापदेश प्रमाया। वेगवती मुलमजोधि थी। उपदेश से उसका हृदय परिवर्तित हो गया। उसे धर्म पर पूर्ण श्रद्धा हो गई। उसी समय उसने भारिका के मत श्रद्धाकार कर लिए। कुछ समय पश्चात् उसे ससार में पराग्य हो गया। दीक्षा श्रद्धाकार कर शुद्ध मयम का पालन करने लगी। कई वर्षों तक मयम का पालन कर वह पाँचवे देवलोक में उत्पन्न हुई। वहाँ से चर कर मिथिला के राजा जनक के घर पुत्रीरूप में उत्पन्न हुई। पूर्णभय में इसने मुनि पर भूठा कलक लगाया था इसलिए इस भय में इस पर भी यह भूठा कलक आया था।

अपने पूर्णभय का वृत्तान्त सुन कर सीता को ससार में विरक्ति होगई। उसी समय राम की आज्ञा लेकर उसने दीक्षा श्रद्धाकार कर ली। कई वर्षों तक शुद्ध मयम का पालन करती रही। अपना अन्तिम मयम नजदीक आया जान कर उसने विधिपूर्वक संलेखना मथारा किया और मर कर गारहवें देवलोक में इन्द्र का पद प्राप्त किया। वहाँ से चर कर कितनेक भव करके मोक्ष प्राप्त

(१०) सुभद्रा

प्राचीन समय में वसन्तपुर नाम का एक रमणीय नगर था। वहाँ जितशत्रु राजा राज्य करता था। उसके मन्त्री का नाम जिनदास था। वह जैन धर्मानुयायी वारह व्रतधारी श्रावक था। उसकी पत्नी का नाम तत्त्वमालिनी था। अपने पति के समान वह पूर्ण धर्मानुरागिणी और श्राविका थी। उसकी कुत्ति से एक महारूपयुती कन्या का जन्म हुआ। इससे माता और पिता दोनों को बहुत प्रसन्नता हुई। जन्मोत्सव मना कर उन्होंने उसका नाम सुभद्रा रक्खा।

माता पिता के विचार, व्यवहार और रहन-सहन का सन्तान पर बहुत असर पड़ता है। सुभद्रा पर भी माता पिता के धार्मिक संस्कारों का गहरा असर पड़ा। बचपन से ही धर्म की ओर उसकी विशेष रुचि थी और धर्मक्रियाओं पर विशेष प्रेम था। माता पिता की देखादेख वह भी धार्मिक क्रियाएं करने लगी। थोड़े ही समय में सुभद्रा ने सामायिक, प्रतिक्रमण, नव तत्त्व, पच्चीस क्रिया आदि का बहुत सा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

योग्य वय होने पर जिनदास को सुभद्रा के योग्य वर खोजने की चिन्ता हुई। सेठ ने विचार किया कि मेरी पुत्री की धर्म के प्रति विशेष रुचि है इस लिए किसी जैन धर्मानुयायी वर के साथ विवाह करने से ही इसका दाम्पत्य जीवन सुखमय हो सकता है। यह सोच कर जिनदास ऐसे ही वर की खोज में रहने लगा।

वसन्तपुर व्यापार का केन्द्र था। अनेक नगरों में आकर व्यापारी वहाँ व्यापार किया करते थे। एक समय चम्पानिवासी उद्धदास नाम का व्यापारी वहाँ आया। वह बौद्ध मतावलम्बी था। एक दिन व्याख्यान सुन कर वापिस आती हुई सुभद्रा को उसने देखा। उसने उसके विषय में पूछताछ की। किसी ने उसे बताया कि

यह जिनदास श्रावक की पुत्री है, अभी कुंवारी है। किसी जैन-धर्मप्रेमी के साथ ही विवाह करने का इसके पिता का निश्चय है।

बुद्धदास के हृदय में उस कन्या को प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हो गई। वह मन में विचारन लगा कि मेरे में और तो सारे गुण विद्यमान हैं सिर्फ इतनी कमी है कि मे जैनी नहीं हूँ। इसे प्राप्त करने के लिये मे जैनी भी बन जाऊँगा। ऐसा दृढ़ निश्चय करके बुद्धदास अब जैन साधुओं के पास जानें लगा। दिखावटी विनय भक्ति करके वह उनके पाद ज्ञान सीखने लगा। मुनिवन्दन, व्याख्यान श्रवण, त्याग, पंचकलाण, सामायिक, पौषध आदि धार्मिक क्रियाएँ करने लगा।

अब बुद्धदास पक्का धार्मिक समझा जाने लगा। सभी लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। धीरे धीरे जिनदाम श्रावक को भी ये सारी बातें मालूम हुई। एक दिन जिनदास ने उसे अपने घर भोजन के लिए निमन्त्रण दिया। बुद्धदास तो ऐसे अप्सर की प्रतीक्षा में था ही। उसे बहुत हर्ष हुआ। प्रातःकाल उठ कर उसने नित्य नियम किया। मुनिवन्दन करके उसने पोरिसी का पंचकलाण कर लिया। पोरिसी आने पर वह जिनदास श्रावक के घर आया। थाली परोसते समय उसने कहा—मुझे अमुक विषय और इतने द्रव्यों के सिवाय आज त्याग है इसलिए इसका ध्यान रखियेगा।

बुद्धदास की इन बातों से जिनदाम को यह विश्वास होगया कि धर्म पर इसका पूर्ण प्रेम है और यह धर्म के मर्म को अच्छी तरह जानता है। यह सुभद्रा के योग्य वर है ऐसा सोच कर जिनदास ने बुद्धदास के सामने अपने विचार प्रकट किये। पहले तो बुद्धदाम ने ऊपरी ढोंग रता कर कुछ आनाकानी की किन्तु के अधिक कहने पर बुद्धदास ने कहा—यद्यपि इस समय विचार विवाह करने —

तथापि आप सरीखे बड़े

मियों के वचनों का मैं उल्लंघन नहीं कर सकता। मैं तो आप मरीखे पडे श्रावकों की आज्ञा का पालन करने वाला हूँ।

बुद्धदास का नम्रता में भरा उत्तर सुन कर जिनदास का हृदय प्रेम में भर गया। शुभ मुहूर्त में उमने सुभद्रा का विवाह उमके साथ कर दिया। कुछ समय तक बुद्धदास वहीं पर रहा। बाद में उनकी आज्ञा लेकर वह अपने घर चम्पापुरी में लौट आया। वहाँ आने पर सुभद्रा को मालूम हुआ कि स्वयं बुद्धदास और उमका सारा कुटुम्ब बौद्धधर्मी हैं। बुद्धदास ने मेरे पिता को धोखा दिया है। सुभद्रा विचारने लगी कि अब क्या हो सकता है। जो कुछ हुआ सो हुआ। मैं अपना धर्म कभी नहीं छोड़ूँगी। धर्म अतरात्मा की वस्तु है। वह मुझे प्राणों में भी प्यारा है। प्राणान्त कष्ट आने पर भी मैं धर्म पर दृढ़ रहूँगी। ऐसा निश्चय कर सुभद्रा पूर्व की भाँति अपना नित्यनियम आदि बौद्धिक क्रियाएँ करती रही।

उमके इन कार्यों को देख कर उसकी मासू बहुत क्रोधित हुई। वह उमसे कहने लगी—मेरे घर में रह कर तैरा यह ढोंग नहीं चल सकता। तू उन सब को छोड़ दे, अन्यथा तुझे कड़ा दण्ड भोगना पड़ेगा।

जब उसकी मासू ने देखा कि उन बातों का उम पर कुछ भी असर न पड़ा तब उमने उम पर किसी प्रकार का लाञ्छन लगा कर उसे अपने मार्ग पर लाने का निश्चय किया।

एक दिन एक जिनकल्पी मुनिराज उधर आ निकले। भिक्षा के लिए उन्होंने सुभद्रा के घर में प्रवेश किया। भक्तिपूर्वक वन्दना कर सुभद्रा ने उन्हें आहार बहराया। 'फ्रम के गिर जाने से मुनिराज की ओर से मे पानी गिर रहा है' यह देख कर सुभद्रा ने बड़ी मावधानी से अपनी जीभ द्वारा फ्रम बाहर निकाल दिया। ऐसा करते समय सुभद्रा के ललाट पर लगी हुई कुंकुम की बिन्दी मुनिराज के ललाट पर लग गई। उमकी मासू ने अपनी उच्छ्राप्ति के

लिये यह अग्रसर ठीक समझा। उमने मुनिरान के ललाट की बिन्दी की ओर संकेत करके बुद्धदाम से कहा— पुत्र ! यह के दुराचार का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है।

यह देख कर बुद्धदास को बहुत दुःख हुआ। वह सुभद्रा को दुराचारिणी समझने लगा। सुभद्रा ने सारी मत्त बात कह सुनाई। फिर भी बुद्धदाम का सन्देह दूर नहीं हुआ। उमने सुभद्रा के साथ अपने सारे सम्बन्ध तोड़ दिये।

सुभद्रा ने विचार किया कि मेरे साथ साथ जैन मुनि पर भी कलक आता है। इसलिए मुझे इस कलक को अग्रसर दूर करना चाहिए। तेल के तप करके वह काउसग्य में स्थित हो गई। तीसरे दिन मध्य रात्रि में शामन देवी प्रकट होकर कहने लगी— सुभद्रे ! तेरा शील अखण्डित है। धर्म पर तेरी दृढ़ श्रद्धा है। मैं तुझ पर प्रसन्न हुई हूँ। कोई चर माग। सुभद्रा ने कहा— देवि ! मुझे किसी वर की आवश्यकता नहीं है। मेरे मिर पर आया हुआ कलक दूर होना चाहिये। 'तथास्तु' कह कर देवी अन्तर्ध्यान होगई।

दूसरे दिन प्रातः काल जय द्वार रक्षक शहर के दरवाजे उघाड़ने लगे तो वे उन्हें नहीं खोल सके। द्वार बज्रमय होगये। अनेक प्रयत्न करने पर भी जय दरवाजे नहीं खुले तो राजा के पास जाकर उन्होंने सारी हकीकत कही। राजा ने कहा— शहर के लुहारों और सुथारों को बुला कर दरवाजों को खुला लो। संयकों ने ऐसा ही किया किन्तु दरवाजे न खुले। तब राजा ने आज्ञा दी की हाथियों को छोड़ कर दरवाजों को तुड़वा दो। मदीनमत्त हाथी छोड़े गये। उन्होंने पूरी ताकत लगा दी किन्तु दरवाजे टम से मस न हुए। अब तो राजा और प्रजा दोनों की चिन्ता काफी बढ़ गई। इसी समय एक आकाशवाणी हुई— 'कोई सती कच्चे मृत के धागे से चलनी को बाँध कर कूँए में

निकाल कर दरवाजों पर छिड़के तो दरवाजे तत्काल खुल जायेंगे।'

आकाशवाणी को सुन कर राजा ने शहर में घोषणा करवाई कि 'जो सती इस काम को पूरा करेगी राज्य की ओर से उसका बड़ा भारी सम्मान किया जायेगा।'

निर्धारित किये हुए कुँए पर लोगों की भारी भीड़ जमा होने लगी। सभी उत्सुकतापूर्ण नेत्रों से देखने लगे कि देखें कौन सती इस कार्य को पूरा करती है। राजसन्मान और यश प्राप्त करने की इच्छा में अनेक स्त्रियों ने कुँए में पानी निकालने का प्रयत्न किया किन्तु सब व्यर्थ रहा। कच्चे सूत में बाँध कर चलनी जब कुँए में लटकाने जाती तो सूत टूट जाने से चलनी कुँए में ही गिर पड़ती अथवा कभी किसी की चलनी जल तक पहुँच भी जाती तो वापिस खींचते समय सारा जल छिद्रों से निकल जाता। राजा की आज्ञा से रानियों ने भी जल निकालने का प्रयत्न किया किन्तु वे भी सफल न हो सकीं। अब तो राजा को बहुत निराशा हुई।

राजा की घोषणा सुन कर सुभद्रा अपनी मास्र के पास आई और जल निकालने के लिये कुँए पर जाने की आज्ञा माँगी। क्रुद्ध होती हुई मास्र ने कहा— बस रहने दो, तुम कितनी सती हो मैं अच्छी तरह जानती हूँ। अपने घर में ही बैठी रहो। वहाँ जाकर सब लोगों के सामने हंसी क्यों करवाती हो? सुभद्रा ने विनय पूर्वक कहा— आप मुझे आज्ञा दीजिए। आपके आशीर्वाद से मैं अग्रय सफल होऊँगी। सुभद्रा का विशेष आग्रह देख कर मास्र ने अनिच्छापूर्वक आज्ञा दे दी।

सुभद्रा कुँए पर आई। कच्चे सूत से चलनी बाँध कर वह आगे बढ़ी। सब लोग टकटकी बाँध कर निर्निमेष दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे। सुभद्रा ने चलनी को कुँए में लटकाया और जल में भर कर बाहर खींच लिया।

सुभद्रा के इस आश्चर्य जनक कार्य को देख कर सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए। राजा और प्रजा में हर्ष छा गया। लोग सुभद्रा के सतीत्व की प्रशंसा करने लगे। सती सुभद्रा की जयध्वनि से आकाश गूँज उठा।

जयध्वनि के नीचे सती एक दरवाजे की ओर बढ़ी। जल छिड़कते ही दरवाजा खुल गया। इस तरह सती ने शहर के तीन दरवाजे खोल दिये। चौथा दरवाजा अन्य किसी सती की परीक्षा के लिये छोड़ दिया।

सती सुभद्रा के सतीत्व की चारों ओर प्रशंसा फैल गई। राजा ने सती का यथेष्ट सम्मान किया और धूमधाम के साथ उसे घर पहुँचाया। सुभद्रा की सासू ने तथा उसके सारे परिवार वालों ने भी सारी बातें सुनीं। उन्होंने भी सुभद्रा के सतीत्व की प्रशंसा की और अपने अपने अपराध के लिये उससे क्षमा माँगी। सती के प्रयत्न से दुद्रुदास तथा उसके माता पिता एवं परिवार के अन्य लोगों ने जैनधर्म अङ्गीकार कर लिया।

अब सुभद्रा का सासारिक जीवन सुखपूर्वक बीतने लगा। पति, मासू तथा सम्बन्धी उसका सत्कार करने लगे। उसे किसी प्रकार का अभाव नहीं रहा, किन्तु सुभद्रा सासारिक वासनाओं में ही फँसी रहना नहीं चाहती थी। उसे ससार की अनित्यता का भी ज्ञान था, इसलिये अपने सासू, श्वसुर तथा पति की आज्ञा लेकर उसने दीक्षा ले ली। शुद्ध सयम का पालन करती हुई अनेक वर्षों तक विचर विचर कर भव्य प्राणियों का कल्याण करती रही। अन्त में केवलज्ञान, केवलदर्शन उपार्जन कर मोक्ष पथ पर

(११) शिवा

प्राचीन समय में विशाला नाम की एक विशाल और सुन्दर नगरी थी। वहाँ चेटक राजा राज्य करता था। उसके सात कन्याएँ थीं। उन में से एक का नाम शिवा था। जब वह विवाह के योग्य हुई तब राजा चेटक ने उसका विवाह उज्जैन के महाराज चण्ड-प्रद्योतन के साथ कर दिया।

शिवा देवी जिस प्रकार शरीर से सुन्दर थी उसी प्रकार गुणों से भी वह सुन्दर थी। विवाह के बाद उज्जैन में आकर वह अपने पति के साथ सुखपूर्वक समय बिताने लगी। अपने पति के विचारों का वह वैसे ही साथ देती—जैसे छाया शरीर का साथ देती है। अवसर आने पर एक योग्य मन्त्री के समान उचित सलाह देने में भी वह न हिचकती थी। इन सब गुणों से राजा उसे बहुत मानने लगा और उसे अपनी पटरानी बना दिया।

राजा के प्रधान मन्त्री का नाम भूदेव था। इन दोनों में परस्पर इतना प्रेम था कि एक दूसरे से थोड़ी देर के लिये भी कोई अलग होना नहीं चाहता था। किसी भी बात में राजा मन्त्री पर अविश्वास नहीं करता था। यहाँ तक कि अन्तःपुर में भी राजा अपने साथ उसे निःशङ्क ले जाता था। इस कारण रानी शिवा देवी का भी उसके साथ परिचय हो गया। अपने पति की उम्र पर इतनी ज्यादा कृपा देख कर वह भी उसका उचित सत्कार करने लगी। मन्त्री का मन मलिन था। उसने इस सत्कार का दूसरा ही अर्थ लगाया। वह रानी को अपने जाल में फँसाने की चेष्टा करने लगा। रानी की मुख्य दासी को उसने अपनी ओर कर लिया। दासी के द्वारा अपना उरा अभिप्राय रानी के सामने रखा।

रानी विचार करने लगी कि पुरुषों का हृदय

होता है। कामान्ध व्यक्ति उचित अनुचित का कुछ भी विचार नहीं करते। रानी ने दामी को ऐसा डाँटा कि वह काँपने लगी। हाथ जोड़ कर उसने अपने अपराध के लिये क्षमा माँगी।

अपनी युक्ति को अमफल होते देख कर मन्त्री बहुत निराश हुआ। अब उसने रानी को पलपूर्वक प्राप्त करने का निश्चय किया। इसके लिये वह कोई अवसर देखने लगा। एक दिन किसी अन्य राजा में मिलने के लिये राजा चण्डप्रद्योतन अपनी राजधानी में बाहर गया। अपने साथ चलने के लिए राजा ने भूदेव मन्त्री को भी कहा किन्तु विमारी का बहाना करके वह वहीं रह गया। रानी शिवा देवी को प्राप्त करने का उसे यह अवसर उचित प्रतीत हुआ। घर से रवाना होकर वह राजमहल में पहुँचा और निःसंकोच भाव में वह अन्तःपुर में चला गया। रानी शिवा देवी के पास जाकर उसने अपनी दुष्ट भावना उसके सामने प्रकट की। उसने रानी को अनेक प्रलोभन दिये और जन्म भर उसका काम करने रहने की प्रतिज्ञा की।

रानी को अपना शील धर्म प्राणों से भी ज्यादा प्यारा था। वह पतिव्रत धर्म में दृढ़ थी। उसने निर्मलत्सना पूर्वक मन्त्री को अन्तःपुर में निकलवा दिया। घर आने पर मन्त्री को अपने दुष्कृत्य पर बहुत पश्चात्ताप होने लगा। वह सोचने लगा कि जब राजा को मेरे कार्य का पता लगेगा तो मेरी कैसी दुर्दशा होगी। इसी चिन्ता में वह बीमार पड़ गया।

बाहर से लौटते ही राजा ने मन्त्री को बुलाया। वह डर के मारे काँपने लगा। बीमारी की अधिकता बता कर उसने राजा के सामने उपस्थित होने में असमर्थता प्रकट की। राजा को मन्त्री के बिना चैन नहीं पड़ता। वह सन्ध्या के समय शिवा देवी को साथ मन्त्री के घर पहुँच गया। अब तो मन्त्री का

मन्त्री की शय्या पर पड़ा हुआ देख कर राजा को बहुत दुःख हुआ । प्रेम की अधिकता से वह स्वयं उसकी सेवा शुश्रूषा में लग गया । पति को सेवा करते हुए देख कर रानी शिवा देवी भी उसकी सेवा में लग गई । रानी का शुद्ध और गम्भीर हृदय जान कर मन्त्री अपने नीच कार्य का पश्चात्ताप करने लगा । उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह चली । रानी उसके भावों को समझ गई । उसे सान्त्वना देती हुई वह कहने लगी— भाई ! पश्चात्ताप से पाप हल्का हो जाता है । एक बार भूल करके भी यदि मनुष्य अपनी भूल को समझ कर सन्मार्ग पर आ जाय तो वह भूला हुआ नहीं गिना जाता । मन्त्री ने शिवा देवी के पैरों में गिर कर क्षमा मांगी ।

एक समय नगर में अग्नि का भयंकर उपद्रव हुआ । अनेक उपाय करने पर भी वह शान्त न हुआ । प्रजा में हाहाकार मच गया । तब इस प्रकार की आकाशपाणी हुई कि कोई शीलवती स्त्री अपने हाथ से चारों दिशाओं में जल छिड़के तो यह अग्नि का उपद्रव शान्त हो सकता है । आकाशपाणी को सुन कर बहुत सी स्त्रियों ने ऐसा किया किन्तु उपद्रव शान्त न हुआ । महल की छत पर चढ़ कर शिवादेवी ने चारों दिशाओं में जल छिड़का । जल छिड़कते ही अग्नि का उपद्रव शान्त हो गया । प्रजा में हर्ष छा गया । 'महासती शिवादेवी की जय' की ध्वनि से आकाश गूँज उठा ।

एक समय ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उज्जयिनी नगरी के बाहर उद्यान में पधारे । रानी शिवा देवी सहित राजा चण्डप्रद्योतन भगवान् को वन्दना नमस्कार करने के लिए गया । भगवान् ने धर्मोपदेश فرमाया । शील का माहात्म्य बताते हुए भगवान् ने फरमाया—

देवदाणवगन्धन्वा, जक्खरक्खसकिन्नरा ।

वम्भयारिं नमंसति, दुक्खर जे करन्ति त ॥

अर्थात्-दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले पुरुषों को देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर आदि सभी नमस्कार करते हैं।

धर्मोपदेश सुन कर सभी लोग अपने स्थान को वापिस चले गये। सती शिवा देवी को समार से प्रीति होगई। राना चण्ड प्रद्योतन की आज्ञा लेकर उसने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। वह विविध प्रकार की कठोर तपस्या करती हुई विचरने लगी। थोड़े ही समय में सन कर्मों का चयन करके उमने मोक्ष प्राप्त किया।

(१२) कुन्ती

प्राचीन समय में शौर्यपुर नाम का नगर था। वहाँ राजा अन्धक वृष्णि राज्य करता था। पटरानी का नाम सुभद्रा था। उसकी कुक्षि से समुद्र विजय, अक्षोभ, स्तिमित, सागर, हिमवान्, अचल, धरण, पूरण, अभिचन्द्र और नसुदेन ये दस पुत्र उत्पन्न हुए। ये दस दशार्ह कहलाते थे। इनके दो नहिन थी—कुन्ती और माद्री। दोनों का रूप लावण्य अद्भुत था।

हस्तिनापुर में पाण्डु राजा राज्य करता था। वह महारूपवान्, पराक्रमी और तेजस्वी था। महाराज अन्धकवृष्णि ने अपनी पुत्री कुन्ती का विवाह पाण्डु राजा के साथ कर दिया। पाण्डु राजा की दूसरी रानी का नाम माद्री था। ये दोनों रानियाँ बड़ी ही विदुषी, धर्मपरायणा और पतिव्रता थीं। इनमें सौतिया डाह बिल्कुल न था। वे दोनों प्रेमपूर्वक रहती थीं। पाण्डु राजा दोनों रानियों के साथ आनन्द पूर्वक समय बिताने लगा। कुछ समय पश्चात् कुन्ती गर्भवती हुई। गर्भ समय पूरा होने पर कुन्ती ने एक महान् तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। पुत्रजन्म में पाण्डु राजा को बहुत प्रसन्नता हुई। बड़ी धूमधाम से उमने पुत्र जन्मोत्सव मनाया और पुत्र का नाम युधिष्ठिर रखा। इसके पश्चात् कुन्ती की कुक्षि से क्रमशः भीम और अर्जुन नाम के दो पुत्र और उत्पन्न हुए। रानी माद्री की कुक्षि में नकुल और सहदेव नाम के दो

हुए। ये पाँचों पाण्डव रुहलाते थे। श्रेष्ठ गुरु के पास इन्हें उत्तम शिक्षा दिलाई गई। थोड़े ही समय में ये पाँचों शास्त्र और शास्त्र दोनों विद्याओं में प्रवीण हो गए।

एक समय पाण्डु राजा मर करने के लिये जंगल में गये। रानी कुन्ती और माद्री दोनों साथ में थीं। वमन्नक्रीड़ा करता हुआ राजा पाण्डु आनन्द पूर्वक समय बिता रहा था। इसी समय अकस्मात् हृदय की गति मन्द हो जाने से उसकी मृत्यु हो गई। इस आकस्मिक वज्रपात से रानी कुन्ती और माद्री को बहुत शोक हुआ। जब यह खबर नगर में पहुँची तो चारों ओर कुहराम छा गया। पाण्डव शोक मग्न में डूब गये। उन्होंने अपने पिता का यथाविधि अग्नि सम्कार किया। माता कुन्ती और माद्री को महलों में लाकर उनकी प्रिय भक्ति करते हुए वे अपना समय बिताने लगे। योग्य वय होने पर पाँचों पाण्डवों का विवाह कम्पिलपुर के राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी के साथ हुआ। द्रौपदी धर्मपरायण एवं पतिव्रता थी।

राजा पाण्डु के बड़े भाई का नाम धृतराष्ट्र था। वे जन्मान्ध थे। उनकी पत्नी का नाम गान्धारी था। उनके दुर्योधन आदि सौ पुत्र थे। जो कौरव कहलाते थे। दुर्योधन बड़ा कुटिल था। वह पाण्डवों से ईर्ष्या रखता था। वह उनका राज्य छीनना चाहता था। उसने पाण्डवों को जुआ खेलने के लिए तैयार कर लिया। पाण्डवों ने अपने राज्य को दाँव पर रख दिया। वे जुए में हार गये। कौरवों ने उनका राज्य छीन लिया। द्रौपदी सहित पाँचों पाण्डव वन में चले गये। वहाँ उन्हें अनेक कष्ट सहन करने पड़े। पुत्र प्रियोग में माता कुन्ती बहुत उदामीन,

एक समय कृष्ण नासुदेव कुन्ती
प्रणाम करके उन्होंने कहा
कुन्ती ने उत्तर दिया— वत्स

पाण्डव वन में कष्ट सहन कर रहे हैं। राजमहलों में पत्नी हुई द्रौपदी भी उनके साथ कष्ट सहन कर रही है। उनका वियोग मुझे दुखी कर रहा है। ऐसी अवस्था में मेरे लिये आनन्द मगल कैसा ? कृष्ण ने उसे सान्त्वना दी और शीघ्र ही उसके दुःख को दूर करने का आश्वासन दिया।

कृष्ण वामुदेव दुर्योधन आदि कौरवों के पास आये। कुछ देकर पाण्डवों के साथ सन्धि कर लेने के लिये उन्हें बहुतेरा सम-झाया किन्तु कौरव न माने। परिणामस्वरूप महाभारत युद्ध हुआ। लाखों आदमी मार गये। पाण्डवों की विजय हुई। युधिष्ठिर हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर बैठे। कुन्ती राजमाता और द्रौपदी राजरानी बनीं। न्याय और नीतिपूर्वक राज्य करने से प्रजा महाराज युधिष्ठिर को धर्मराज कहने लगी।

युद्ध में दुर्योधन आदि सभी कौरव मारे गये थे। पुत्रों के शोक में दुखी होकर धृतराष्ट्र और गान्धारी वन में जाकर रहने लगे। उनके शोक सन्तप्त हृदय को सान्त्वना देने तथा उनकी सेवा करने के लिये कुन्ती भी उनके पास वन में जाकर रहने लगी।

कुछ समय पश्चात् कुन्ती ने दीक्षा लेने के लिये अपने पुत्रों से अनुमति माँगी। पाण्डवों के इन्कार करने पर कुन्ती ने उन्हें सम-झाते हुए कहा—पुत्रों ! जो जन्म लेकर इस संसार में आया है एक न एक दिन उसे अवश्य यहाँ से जाना होगा। यहाँ सदा किसी की न बनी रही है और न सदा बनी रहेगी। कल यहाँ कौरवों का राज्य था। आज उनका नाम निशान भी नहीं है। आत्म-शान्ति न राज्य से मिलती है, न धन से, न कुटुम्ब से और न वैभव से। आत्मशान्ति तो त्याग से ही मिल सकती है। मैंने राज रानी बन कर पति मुख देखा, तुम्हारे वन में चले जाने पर पुनः वियोग का कष्ट सहन । वापिस आने पर ~ ~

तुम्हारे राजसिंहासन बैठने पर मैं राजमाता बनी । मैंने संसार के सारे रंग देख लिये किन्तु मुझे आत्मिक शान्ति का अनुभव न हुआ । ये सासारिक सम्बन्ध मुझे बन्धन मालूम पड़ते हैं । मैं इन्हे तोड़ डालना चाहती हूँ ।

माता कुन्ती के उत्कृष्ट वैराग्य को देख कर पाण्डवों ने उसे दीक्षा लेने की अनुमति दे दी । पुत्रों की अनुमति प्राप्त कर कुन्ती ने दीक्षा अङ्गीकार कर ली । विविध प्रकार की कठोर तपस्या करती हुई कुन्ती आर्या विचरने लगी । थोड़े ही समय में तपस्या द्वारा सभी कर्मों का क्षय कर वह मोक्ष में पधार गई ।

(१३) दमयन्ती

विदर्भ देश में कु छिनपुर (कुन्दनपुर) नाम का नगर था । वहाँ भीम राजा राज्य करता था । उसकी पटरानी का नाम पुष्पवती था । उसकी कुक्षि से एक पुत्री का जन्म हुआ जिसका नाम दमयन्ती रखा गया । उसका रूप सौन्दर्य अनुपम था । उसकी बुद्धि तीव्र थी । थोड़े ही समय में वह स्त्री की चौसठ कलाओं में प्रवीण होगई ।

‘दमयन्ती का विवाह उसकी प्रकृति, रूप, गुण आदि के अनुरूप ऋतु के साथ हो’ ऐसा मोक्ष कर राजा भीम ने स्वयंवर द्वारा उसका विवाह करने का निश्चय किया । विविध देशों के राजाओं के पास आमन्त्रण भेजे । निश्चित तिथि पर अनेक राजा और राजकुमार स्वयंवर मण्डप में एकत्रित हो गए । कौशलदेश (अयोध्या) का राजा निषध भी अपने पुत्र नल और कुन्ति के साथ वहाँ आया ।

हाथ में माला लेकर एक मखी के साथ दमयन्ती स्वयंवर मण्डप में आई । राजाओं का परिचय प्राप्त करती हुई दमयन्ती धीरे धीरे आगे बढ़ने लगी । राजकुमार नल के पास आकर उसने उनके पराक्रम आदि का परिचय प्राप्त किया । दर्पण में पड़ने वाले

का कुशल समाचार पूछा। कुशल समाचार कहने के बाद ब्राह्मण ने कहा कि राजा भीम ने राजा नल और दमयन्ती की खोज के लिए चारों दिशाओं में अपने दूत भेज रखे हैं किन्तु अभी उनका कहीं भी पता नहीं लगा है। सुनते हैं कि राजा नल दमयन्ती को जंगल में अकेली छोड़ कर चला गया है। इस समाचार से राजा भीम की चिन्ता और भी गह गई है। नल और दमयन्ती की गहृत खोज की किन्तु उनका कहीं भी पता नहीं लगा। आग्विर निराश होकर अन्न में पापिम कुण्डिनपुर लौट रहा है।

भोजन करके ब्राह्मण विश्राम करने चला गया। शाम को धूमता हुआ ब्राह्मण राजा की दानशाला में पहुँचा। दान देती हुई कन्या को देख कर वह आगे बढ़ा। वह उसे परिचित सी मालूम पड़ी। नजदीक पहुँचने पर उसे पहिचानने में देर न लगी; दमयन्ती ने भी ब्राह्मण को पहिचान लिया।

ब्राह्मण ने जाकर रानी चन्द्रयशा को खबर दी। वह तत्काल दानशाला में आई और दमयन्ती से प्रेमपूर्वक मिली। न पहिचानने के कारण उसने दमयन्ती से दामी का काम लिया था इसलिए वह पश्चात्ताप करने लगी और दमयन्ती से अपने अपराध के लिए क्षमा मागने लगी। रानी चन्द्रयशा दमयन्ती को साथ लेकर महलों में आई। इस बात का पता जब राजा ऋतुपर्ण को लगा तो वह बहुत प्रसन्न हुआ।

इसके बाद ब्राह्मण की प्रार्थना पर राजा ऋतुपर्ण ने दमयन्ती को भूमराम के साथ कुण्डिनपुर की ओर रवाना किया। यह खबर राजा भीम के पास पहुँची। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। कुछ सामन्तों को उसके सामने भेजा। महलों में पहुँच कर दमयन्ती ने मातापिता को प्रणाम किया। इसके पश्चात् उसने अपनी मारी दुःखकहानी कह सुनाई। किम तरह राजा नल उसे भयकर वन में अकेली

कर्म बाँधते समय प्राणी खुश होता है किन्तु जब उनका अशुभ फल उदय में आता है तब वह महान् दुखी होता है। हँसते हँसते प्राणी जिन कर्मों को बाँधते हैं, रोने पर भी उनका छुटकारा नहीं होता। क्रिम रूप में कर्म बाँधते हैं और क्रिम रूप में उदय में आते हैं यही कर्मों की विचित्रता है।

जंगल में आगे चलती हुई दमयन्ती को धनदेव नाम का एक सार्थपति मिला। वह अचलपुर जा रहा था। दमयन्ती भी उसके साथ हो गई। धनदेव ने उमका परिचय जानना चाहा किन्तु दमयन्ती ने अपना वास्तविक परिचय न दिया। उमने कहा कि मैं दासी हूँ। रुही नौकरी करना चाहती हूँ। धनदेव ने विशेष ध्यानवीन करना उचित न समझा। धीरे धीरे वे सब लोग अचलपुर पहुँचे। धनदेव का मार्थ (काफिला) नगर के बाहर ठहर गया।

अचलपुर में अतुर्पण राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम चन्द्रयशा था। उसे मालूम पड़ा कि नगर के बाहर एक सार्थ ठहरा हुआ है। उसमें एक कन्या है। वह देवकन्या के समान सुन्दर है। कार्य में बहुत होशियार है। उसने सोचा यदि उसे अपनी दानशाला में रख दिया जाय तो बहुत अच्छा हो। रानी ने नौकरों को भेज कर उसे बुलाया और बातचीत करके उसे अपनी दानशाला में रख लिया।

चन्द्रयशा दमयन्ती की मौसी थी। चन्द्रयशा ने उसे नहीं पहि-चाना। दमयन्ती अपनी मौसी और मौसा को भलि प्रकार पहि-चानती थी किन्तु उसने अपना परिचय देना उचित न समझा। वह दानशाला में काम करने लग गई। आने जाने वाले अतिथियों को खूब दान देती हुई ईश्वरभवन में अपना समय बिताने लगी।

एक समय कुण्डिनपुर का एक ब्राह्मण अचलपुर आया। राजा रानी ने उचित सत्कार करके महाराजा भीम और रानी पुष्पवती

कठोर तपस्या करते हुए विचरने लगे। एक समय गुरु की आज्ञा लेकर सूर्य की आत्मापना लेने के लिये वे जगल में गये। वहाँ जाकर निबल रूप में ध्यान में खड़े हो गये। परिणामों की विशुद्धता के कारण वे चपकश्रेणी में चढ़े और घाती कर्मों का चयन कर उन्होंने तत्काल केवलज्ञान केवलदर्शन उपार्जन कर लिए। उनका केवलज्ञान महोत्तम मनाने के लिए देव आने लगे। यह दृश्य देख कर दमयन्ती भी उधर गई। वन्दना नमस्कार करके उसने अपने पूर्वभव के विषय में पूछा। केवली भगवान् ने फरमाया— 9

इस जम्बूद्वीप में भरतचेय के अन्दर ममण नाम का एक राजा था। उसकी स्त्री का नाम वीरमती था। एक समय राजा और रानी दोनों कहीं बाहर जाने के लिये तैयार हुए। इतने में सामने एक मुनि आते हुए दिखाई दिये। राजा रानी ने उसे अपशकुन ममका। अपने मिपाहियों द्वारा मुनि को पकड़वा लिया और बारह घण्टे तक उन्हें वहाँ रोक रक्खा। इसके पश्चात् राजा और रानी का क्रोध शान्त हुआ। उन्हें सद्बुद्धि आई। मुनि के पास आकर वे अपने अपराध के लिये बारबार क्षमा मागने लगे। मुनि ने उन्हें धर्मोपदेश दिया जिससे राजा और रानी दोनों ने जैनधर्म स्वीकार किया और वे दोनों शुद्ध सम्प्रदाय का पालन करते हुए समय प्रितान लगे। आयुष्य पूर्ण होने पर ममण का जीव राजा नल हुआ है और रानी वीरमती का जीव तू दमयन्ती हुई है। निष्कारण मुनिराज को बारह घण्टे तक रोक रखने के कारण इस जन्म में तुम पति पत्नी का बारह वर्ष तक वियोग रहेगा।

यह फरमान के बाद केवली भगवान् के शेष चार अघाती कर्म नष्ट हो गए और वे उम्मी समय मोक्ष पधार गये।

केवली भगवान् द्वारा अपने पूर्वभव का उत्तान्त सुन कर दमयन्ती कर्मों की विचित्रता पर बारबार विचार करने लगी। अशुभ

हैं। फल खाने की इच्छा से वह उम पर चढ़ी। उसी समय एक मदोन्मत्त हाथी आया और उमने आम्रवृक्ष को उखाड़ कर फेंक दिया। वह भूमि पर गिर पड़ी। हाथी उमकी ओर लपका और उमे अपनी सूँड में उठा कर भूमि पर पटका।

इस भयंकर स्वप्न को देख कर वह चौंकर पड़ी। उठ कर उसने देखा तो राजा नल वहाँ पर नहीं था। वह उसे ढूँढने के लिए उधर उधर जंगल में घूमने लगी किन्तु कहीं पता नहीं लगा। उतने में उसकी दृष्टि अपनी साड़ी के कोने पर पड़ी। राजा नल के लिखे हुए अक्षरों को देखकर वह मूर्च्छित होकर धड़ाम से धरती पर गिर पड़ी। कितनी ही देर तक वह इसी अवस्था में पड़ी रही। वन का शीतल पवन लगने पर उसकी मूर्च्छा दूर हुई। अपने भाग्य को चारचार कोसती हुई वह अपने देखे हुए स्वप्न पर विचार करने लगी—आम्रवृक्ष के समान मेरे पनि देव हैं। आम्रफल के समान राज्यलक्ष्मी हैं। मदोन्मत्त हाथी के समान कुनेर हैं। मुझे भूमि पर पछाड़ने का मतलब मेरे लिये पतिवियोग है।

बहुत देर तक विचार करने के पश्चात् दमयन्ती ने यही निश्चय किया कि अब मुझे पति द्वारा निर्दिष्ट मार्ग ही स्वीकार करना चाहिये। ऐसा सोच कर उसने कुण्डिनपुर की ओर प्रयाण किया। मार्ग बहुत विरुष्ट था। भयंकर जंगली जानवरों का सामना करती हुई दमयन्ती आगे बढ़ने लगी।

उन दिनों यशोभद्र मुनि ग्रामानुग्राम विचर कर धर्मोपदेश द्वारा जनता का कल्याण कर रहे थे। एक समय वे अयोध्या में पधारे। राजा कुनेर अपने पुत्रसहित धर्मोपदेश सुनने के लिये आया। धर्मोपदेश सुन कर कुनेर के पुत्र राजकुमार सिंहकेसरी को वैराग्य उत्पन्न होगया। पिता की आज्ञा लेकर उसने यशोभद्र मुनि के पास दीक्षा अङ्गीकार कर ली। कर्मों का क्षय करने के लिये वे

हाथी पूरा वेग से दौड़ा जा रहा था। इससे नगर में हाहाकार मच गया। हाथी को बश में करने के लिए बहुत बड़ी सम्पत्ति देने के लिए राना ने घोषणा करवाई। राजसन्मान और सम्पत्ति को सभी लोग चाहते थे किन्तु हाथी का सामना करना साक्षात् मृत्यु थी। मरना कोई भी नहीं चाहता था।

नल हाथी को पकड़ने की कला जानता था। इसलिए वह आगे बढ़ा। एक सफेद कपड़े को चाँस पर लपेट कर हाथी के सामने खड़ा कर दिया और नल उसके पास छुप कर खड़ा हो गया। कपड़े को आदमी समझ कर उसे मारने के लिए ज्यों ही हाथी दौड़ कर उधर आया त्यों ही पास में छुपा हुआ नल हाथी का कान पकड़ कर उसकी गर्दन पर सवार हो गया। उसने हाथी के मर्मस्थान पर ऐसा मुष्टि प्रहार किया जिससे उसका मद तत्काल उतर गया। शान्त होकर वह जहाँ का तहाँ खड़ा हो गया। नल ने उसे आलानस्तम्भ (हाथी के बाधने की जगह) में बाँध दिया।

राजा और प्रजा का भय दूर हुआ। सर्वत्र प्रसन्नता छा गई। राजा दधिपर्ण बहुत सन्तुष्ट हुआ। वस्त्राभरण से सन्मानित करके राजा ने उस कुम्भे को अपने पास बिठाया। राजा उसका परिचय पूछने लगा। नल ने अपना वास्तविक परिचय देना ठीक नहीं समझा। उसने कहा—मैंने अयोध्या नरेश, नल के यहाँ रसोईए का काम किया है। राजा नल सूर्य की कृपा से सूर्यपाक रसवती बनाना जानते थे। बहुत आग्रह करने पर उन्होंने मुझे भी सिखा दिया है। तब राजा दधिपर्ण ने कहा—तुम हमारे यहाँ रहो और रसोईए का काम करो। उसने राजा की बात मान ली और काम करने लगा।

राजा नल जब दमयन्ती को छोड़ कर चला गया तो कितनी ही देर तक दमयन्ती सुखपूर्वक सोती रही। रात्रि के पिछले पहर में उसने एक स्वप्न देखा—‘फलों से लदा हुआ एक आम्रवृक्ष

जाना। मुझे मत डूँढना। मैं तुम्हें नहीं मिल सकूँगा। ऐसा लिख कर सोती हुई दमयन्ती को छोड़ कर नल आगे जंगल में चला गया।

कुछ आगे जाने पर नल ने जंगल में एक जगह जलती हुई आग देखी। उसमें मे आवाज आ रही थी—हे इच्छाकुलनन्दन राजा नल ! तू मेरी रक्षा कर। अपना नाम सुन कर नल चौंक पड़ा। वह तेजी से उम और बढ़ा। आगे जाकर क्या देखता है कि जलती हुई अग्नि के बीच एक साप पड़ा हुआ है और वह मनुष्य की वाणी में अपनी रक्षा की पुकार कर रहा है। राजा नल ने तत्काल साँप को अग्नि से बाहर निकाला। बाहर निकलते ही सर्प ने राजा नल के दाहिने हाथ पर डक मारा जिससे वह कुन्हा बन गया। अपने शरीर की विकृत देख कर नल चिन्ता करने लगा। राजा को चिन्तित देख कर सर्प ने कहा—हे वत्स ! तू चिन्ता मत कर। मैं तेरा पिता निपध हूँ। समय का पालन कर मैं ब्रह्मदेवलोक में देव हुआ हूँ। तू अभी अकेला है। तुझे पहिचान कर कोई शत्रु उपद्रव न करे इसलिए मैंने तेरा रूप विकृत बना दिया है। यह ले मैं तुझे रूपपरावर्तिनी विद्या देता हूँ जिससे तू अपनी इच्छानुसार रूप बना सकेगा। पूर्वभय के अशुभ कर्मों के उदय से कुछ काल के लिए तुझे यह कष्ट प्राप्त हुआ है। बारह वर्ष के बाद तेरा दमयन्ती से पुनर्मिलन होगा और तुझे अपना राज्य वापिस प्राप्त होगा। ऐसा कह कर सर्परूपधारी देव अन्तर्ध्यान होगया।

राजा नल वहाँ से आगे बढ़ा। भयङ्कर जंगली जानवरों का सामना करता हुआ वह जंगल से बाहर निकला। नगर की ओर प्रयाण करता हुआ वह सुसुमार नगर में जा पहुँचा।

सुसुमार नगर में दधिपर्ण राजा राज्य करता था। एक समय उसका पट्टहस्ती मदोन्मत्त होकर गजनन्धनस्तम्भ को तोड़ कर भाग निकला। औरतों, बच्चों और मनुष्यों को कुचलता हुआ

आता । कुछ शर्त रखिये । राजा नल ने अपना सारा राज्य दाव पर रख दिया । कुबेर का पासा सीधा पड़ा । वह जीत गया । शर्त के अनुसार अब राज्य का स्वामी कुबेर हो गया ।

राजा नल राजपाट को छोड़ कर जंगल में जाने को तैयार हुआ । दमयन्ती भी उसके साथ वन जाने को तैयार हुई । राजा नल ने उसे बहुत समझाया और कहा— प्रिये ! पैदल चलना, भूख प्यास को सहन करना, सर्दी गर्मी में समभाव रखना, जगली जानवरों से भयभीत न होना, इस प्रकार के और भी अनेक कष्ट जंगल में सहन करने पड़ते हैं । तुम राजमहलों में पली हुई हो । इन कष्टों को सहन न कर सकोगी । इसलिए तुम्हारे लिये यही उचित है कि तुम अपने पिता के यहाँ चली जाओ ।

दमयन्ती ने कहा— स्वामिन् ! आप क्या कह रहे हैं ? क्या छाया शरीर से दूर रह सकती है ? मैं आपसे अलग नहीं रह सकती । जहाँ आप हैं वही मैं हूँ । मैं आपके साथ वन में चलूँगी ।

दमयन्ती का विशेष आग्रह देख कर नल ने उसे अपने साथ चलने के लिए कह दिया । नल और दमयन्ती न वन की ओर प्रस्थान किया । चलते चलते वे एक भयंकर जंगल में पहुँच गये । सन्ध्या का समय हो चुका था और वे भी थक गए थे । इसलिए रात बिताने के लिए वे एक वृक्ष के नीचे ठहर गए । रास्ते की थकावट के कारण दमयन्ती को सोते ही नींद आ गई । नल अपने भाग्य पर विचार कर रहा था । उसे नींद नहीं आई । वह मोचने लगा— दमयन्ती वन के कष्टों को सहन न कर सकेगी । मोह के कारण यह मेरा साथ नहीं छोड़ना चाहती है । इसलिए यही अच्छा है कि मैं इसे यहाँ सोती हुई छोड़ कर चला जाऊँ । ऐसा विचार कर नल ने दमयन्ती की साड़ी के एक किनारे पर लिखा— प्रिये ! रात हाथ की ओर तुम्हारे पीछर कुण्डिनपुर का रास्ता है । तुम वहाँ चली

उनके शरीर का प्रतिबिम्ब देखा । रूप और गुण में नल अद्वितीय था । दमयन्ती ने उसे सर्व प्रकार से अपने योग्य वर समझा । उसने राजकुमार नल के गले में परमाला डाल दी । योग्य वर के चुनाव से सभी को प्रमत्तता हुई । सभी ने नव वरवधू पर पुष्पों की वर्षा की । राजा भीम ने यथाविधि दमयन्ती का विवाह राजकुमार नल के साथ कर दिया । यथोचित आदर मत्कार कर राजा भीम ने उन्हें विदा किया ।

राजा निषध नव वरवधू के साथ आनन्दपूर्वक अपनी राजधानी अयोध्या में पहुँच गये । पुत्र के विवाह की खुशी में राजा निषध ने गरीबों को बहुत दान दिया । कुछ समय पश्चात् राजा को समार से विरक्ति होगई । अपने ज्येष्ठ पुत्र नल को राज्य का भार सौंप कर राजा ने दीक्षा अङ्गीकार कर ली । मुनि बन कर वे कठोर तपस्या करते हुए आत्मकल्याण करने लगे ।

नल न्याय-नीतिपूर्वक राज्य करने लगा । प्रजा को वह पुत्रवत् प्यार करता था । उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गई । नल राजा का छोटा भाई कुनेर डम को सहन न कर सका । राजा नल ने उसका राज्य छीन लेने के लिये वह कोई उपाय सोचने लगा । कुनेर जुआ खेलने में बड़ा चतुर था । उसका फँका हुआ पासा उल्टा नहीं पड़ता था । उसने यही निश्चय किया कि नल को जुआ खेलने के लिये कहा जाय और शर्त में उसका राज्य दाव पर रख दिया जाय । फिर मेरा मनोरथ सिद्ध होने में कुछ देर न लगेगी ।

एक दिन कुनेर नल के पास आया । उसने जुआ खेलने का प्रस्ताव रक्खा । राजा नल को भी जुआ खेलने का बहुत शौक था । उसने कुनेर का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया । इसके लिये एक दिन नियत किया गया । दोनों भाई जुआ खेलने बैठे । खेलते खेलते कुनेर ने कहा— भाई ! इस तरह खेलने में आनन्द नहीं

मोती हुई छोड़ गया और किम किम तरह से उसे भयकर जगली जानवरों का सामना करना पड़ा, आदि वृत्तान्त सुन कर राजा और रानी का हृदय काप उठा। उन्होंने दमयन्ती को सान्त्वना दी और कहा— पुत्रि ! तू अब यहाँ शान्ति से रह। नल राजा का शीघ्र पता लगाने के लिए प्रयत्न किया जायगा। दमयन्ती शान्ति पूर्वक वहाँ रहने लगी। राजा नल की खोज के लिये राजा भीम ने चारों दिशाओं में अपने आदमियों को भेजा।

एक समय सुसुमार नगर का एक व्यापारी कुण्डिनपुर आया। गतचीत के मिलमिले में उसने राजा से बातलाया कि नल राजा का एक रमोइया हमारे नगर के राजा दधिपर्ण के यहाँ रहता है। वह सूर्यपाक रमवती बनाना जानता है। पास में बैठी हुई दमयन्ती ने भी यह बात सुनी। उसे कुछ विश्वास हुआ कि वह राजा नल ही होना चाहिए। व्यापारी ने फिर कहा वह रसोइया शरीर में कुनड़ा है किन्तु बहुत गुणवान् है। पागल हुए हाथी को वश में करने की विद्या भी वह जानता है। यह सुन कर दमयन्ती को पूर्ण विश्वास हो गया कि वह राजा नल ही है किन्तु विद्या के बल से अपने रूप को उसने बदल रखा है, ऐसा मालूम पड़ता है।

दमयन्ती के कहने पर राजा भीम को भी विश्वास हो गया किन्तु वे एक परीक्षा और करना चाहते थे। उन्होंने कहा राजा नल अध्विद्या में विशेष निपुण हैं। यह परीक्षा और कर लेनी चाहिये। इसमें पूरा निश्चय हो जायगा। फिर सन्देह का कोई कारण नहीं रहेगा। इसलिये मैं एक उपाय सोचा है— यहाँ से एक दूत सुसुमार नगर राजा दधिपर्ण के पास भेजा जाय। उसके साथ दमयन्ती के स्वयंवर की आमन्त्रणपत्रिका भेजी जाय। दूत को स्वयंवर की निश्चिततिथि के एक दिन पहले यहाँ पहुँचना चाहिए।

। इसी वह ।

कुनड़ा राजा

को यहाँ एक दिन में पहुँचा देगा। राजा भीम की यह युक्ति, सब को ठीक जँची।- उसी समय एक दूत, को सारी बात समझा कर सुसुमार नगर के लिये रवाना कर-दिया।

चलता हुआ दूत कई दिनों में सुसुमार नगर में पहुँचा। राजा के पास जाकर उसने आमन्त्रणपत्रिका दी। राजा बहुत-प्रसन्न हुआ, किन्तु उसे पढ़ते हुए राजा का चेहरा उदास हो गया। कुण्डिन-पुर बहुत दूर था और स्वयंवर में सिर्फ एक ही दिन बाकी था। राजा सोचने लगा अब कुण्डिनपुर कैसे पहुँचा जाय। राजा की चिन्ता उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। नल भी, अपने मन में विचारने लगा कि आर्यकन्या दमयन्ती दुनारा स्वयंवर कैसे करेगी। चल कर मुझे भी देखना चाहिये। ऐसा सोच कर उसने कहा महाराज ! आप चिन्ता क्यों करते हैं ? यदि आपकी इच्छा कुण्डिनपुर-जाने की हो तो श्रेष्ठ घोड़ों वाला एक रथ मगाइये। मैं अश्वविद्या जानता हूँ। अतः आपको आज ही कुण्डिनपुर पहुँचा दूँगा।

कुण्डे की बात सुन कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उमी समय रथ मंगाया। राजा उसमें बैठ गया। कुण्डा सारथी बना। घोड़े हवा में बातें करने लगे। थोड़े ही समय में वे कुण्डिन-पुर पहुँच गये। राजा भीम ने उनका उचित मन्मान करके उत्तम स्थान में ठहराया। राजा दधिपर्ण ने देखा कि शहर में स्वयंवर की कुछ भी तैयारी नहीं है फिर भी शान्तिपूर्वक वे अपने नियत स्थान पर ठहर गये।

अब राजा भीम और दमयन्ती को पूर्ण विश्वास हो गया कि यह कुण्डा कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है किन्तु राजा नल ही है। राजा भीम ने शाम को उसे अपने महल में उलाया। राजा ने उससे कहा हमने आपके गुणों की प्रशंसा सुन ली है। हमने स्वयं भी परीक्षा कर ली है। आप राजा नल ही हैं।

अब हम लोगों पर कृपा कर आप अपना असली रूप प्रकट कीजिए।

राजा भीम की बात के उत्तर में कुञ्जरूपधारी नल ने कहा—
राजन् ! आप क्या कह रहे हैं ? कहाँ राजा नल और कहाँ मैं ? कहाँ उनका रूप मन्दिर्य और कहाँ मैं कुम्हा । आप भ्रम में हैं । विपत्ति के मारे राजा नल कहीं जंगलों में भटक रहे होंगे । आप वहीं खोज करवाइये ।

राजा भीम ने कहा—हस्तिविद्या, अश्वविद्या, सूर्यपाक समवती विद्या आदि के द्वारा मुझे पूर्ण निश्चय हो गया कि आप राजा नल ही हैं । राजन् ! स्वजनों को अब विशेष कष्ट में डालना उचित नहीं है । ऐसा कहते हुए राजा का हृदय भर आया ।

राजा नल भी अब ज्यादा देर के लिए अपने आप को न छिपा सके । तुरन्त रूपरान्तिनी विद्या द्वारा अपने असली रूप में प्रकट हो गए । राजा भीम, रानी पुष्पवती और दमयन्ती के हर्ष का पारावार न रहा । शहर में इस हर्ष समाचार को फैलते देर न लगी । ग्राम में खुशी छा गई । राजा दधिपर्ण भी वहाँ आया । न पहिचानने के कारण अपने यहाँ नौकर रखने के लिए उमने राजा नल से क्षमा माँगी ।

जब यह सब अयोध्या पहुँची तो वहाँ का राजा कुबेर तत्काल कृष्णनगपुर के लिए रवाना हुआ । जाकर अपने बड़े भाई नल के पैरों में गिरा और अपने अपराधों के लिए क्षमा मागने लगा । बड़े भाई नल को वन में भोजन के कारण उसे बहुत पश्चात्ताप हो रहा था । अयोध्या का राज्य स्वीकार करने के लिए वह नल से प्रार्थना करने लगा ।

नल और दमयन्ती को साथ लेकर कुबेर अयोध्या की ओर रवाना हुआ । नल दमयन्ती का आगमन सुन कर की प्रजा उनके दर्शनों के लिए उमड़ पड़ी ।

कुवेर ने राजगद्दी नल को सौंप दी । अतः नल राजा हुआ और दमयन्ती महारानी बनी । न्याय नीतिपूर्वक राज्य करता हुआ राजा नल प्रजा का पुत्रवत् पालन करने लगा । कुछ समय पश्चात् महारानी दमयन्ती की कुक्षि से एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम पुष्कर रक्खा गया । जब राजकुमार पुष्कर युवावस्था को प्राप्त हुआ तो उसे राज्य भार सौंप कर राजा नल और दमयन्ती ने दीक्षा ले ली ।

जिन कर्मों ने नल दमयन्ती को वन वन भटकाया और अनेक कष्टों में डाला, नल और दमयन्ती ने उन्हीं कर्मों के साथ युद्ध करके उनका अन्त करने का निश्चय कर लिया ।

कई वर्षों तक शुद्ध संयम का पालन कर नल और दमयन्ती देवलोक में गये । वहाँ से चतुर मनुष्य भव में जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेंगे । (पंच प्रतिक्रमण) (भगवत्पुरुषवाहुर्बलिर्वात्त गा० ८) (त्रिपाष्ट शलाका पु च पर्व ८ सर्ग ३) ।

(१४) पुष्पचूला

गङ्गा नदी के तट पर पुष्पभद्र नाम का नगर था । वहाँ पुष्पकेतु राजा राज्य करता था । उसकी रानी का नाम पुष्पवती था । उनके दो सन्तान थी, एक पुत्र और दूसरी पुत्री । पुत्र का नाम पुष्पचूल था और पुत्री का नाम पुष्पचूला । भाई बहिन में परस्पर बहुत स्नेह था । पुष्पचूला में जन्म से ही धार्मिक सस्कार जमे हुए थे । सांसारिक भोगविलास उसे अच्छे न लगते थे ।

विवाह के बाद उसने दीक्षा ले ली । तपस्या और धर्मध्यान के साथ साथ दूसरों की वैयावच्च में भी वह बहुत रुचि दिखाने लगी । शुद्धभाष से मेवा में लीन रहने के कारण वह क्षपक श्रेणी में चढ़ी । उसके घातीकर्म नष्ट हो गए ।

अपने उपदेशों से भक्त्यप्राणियों का कल्याण करती हुई महा-पुष्पचूला ने आयुष्य पूरी होने पर मोक्ष को प्राप्त किया ।

(१५) प्रभावती

विशाला नगरी के स्वामी महाराजा चंद्रक के मात पुत्रियों थी। सभी पुत्रियाँ गुणवती, शीलवती तथा धर्म में रुचि वाली थी। उनमें से मृगावती, शिवा, प्रभावती और प्रभावती मोलह मतिषा में गिनी गई हैं। इनका नाम मङ्गलमय ममक कर प्रातः काल जपा जाता है। विशाला उण्डलपुर के महाराज मिद्वार्थ की रानी थी। उन्होंने के गर्भ में चरम तीर्थद्वार श्रमण भगवान् महावीर का जन्म हुआ था। चेलणा श्रेणिक राजा की रानी थी। उन्होंने अपने उपदेश तथा प्रभाव में श्रेणिक को सम्यग्दृष्टि तथा भगवान् महावीर का परम भक्त बनाया। सातवीं पुत्री का नाम सुज्येष्ठा था। चेलणा की बड़ी सहिन सुज्येष्ठा ने गालवत्तचारिणी माधरी होकर आत्म-कल्याण किया। देश तथा धर्म के नाम को उज्ज्वल करने वाली ऐसी पुत्रियों के कारण चेड़ा महाराज जैन साहित्य में अमर रहेंगे।

प्रभावती का विवाह मिन्नुसीवीर देश के राजा उदयन के साथ हुआ था। उनकी राजधानी वीतभय नगर था। प्रभावती में जन्म में ही धर्म के दृढ़ संस्कार थे। उदयन भी धर्मपरायण राजा था। धर्म तथा न्याय में प्रजा का पालन करते हुए वे अपना जीवन सुखपूर्वक बिता रहे थे। कुछ समय पश्चात् प्रभावती के अभिचि नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

एक बार श्रमण भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विचर कर जनता का कल्याण करते हुए वीतभय नगर में पधारे। राजा तथा रानी दोनों दर्शन करने गए। भगवान् का उपदेश सुन कर प्रभावती ने दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। दीक्षा की आज्ञा देने से पहले राजा ने रानी से कहा—जिस समय तुम्हें देख लोऊंगा तो हो सुके प्रतिरोध देने के लिए आना। प्रभावती ने ७

वात मान कर दीक्षा अङ्गीकार कर ली। कठोर तपस्या तथा निर्दोष संयम का पालन करती हुई वह आयुष्य पूरी होन का काल करक देवलोक में उत्पन्न हुई।

अपने दिए हुए वचन के अनुसार उमने मृत्युलोक में आकर उदयन राजा को प्रतिबोध दिया। राजा ने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। कठोर तपस्या द्वारा वह राजर्षि हो गया।

यथाममय कर्मों को खर्चा कर दोनों मोक्ष प्राप्त करेंगे।

(१६) पद्मावती

पद्मावती वैशाली के महाराजा चेटक की पुत्री और चम्पनरेश महाराजा दधिवाहन की रानी थी। दधिवाहन न्याय प्रजापत्मल और धार्मिक राजा था। रानी भी उसी के समान गुणों वाली थी। राजा और रानी दोनों मर्यादित भोगों का भोगते हुए सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे।

एक बार रात्रि के पिछले पहर में रानी ने एक शुभस्वप्न देखा। पृष्ठने पर स्वप्नशास्त्रियों ने बताया कि रानी के गर्भ में किमी प्रताप पुत्र का जन्म होगा। राजा और रानी दोनों को बड़ी प्रसन्नता हुई।

रानी ने गर्भ धारण किया। कुछ दिनों बाद उसके मन में विविध प्रकार के दोहद (गर्भिणी की इच्छा) उत्पन्न होने लगे। एक बार रानी की इच्छा हुई— मैं राजा का वेश पहिन्नूँ। सिर पर मुकुट रखूँ, गजा मुझ पर छत्र धारण करे। इस प्रकार सज धज कर मेरे सवारी नगर में से निकले। इसके बाद वन में जाकर क्रीड़ा करूँ। लज्जा के कारण रानी अपने इस दोहद को प्रकट न कर सकी। किन्तु इच्छा बहुत प्रबल थी इसलिए वह मन ही मन घुलने लगी, उसके चेहरे पर उदामी छा गई। शरीर प्रतिदिन दुर्बल होने लगा। राजा ने रानी में दुर्बलता का कारण पूछा। रानी ने पहले

तो टालमटोल की किन्तु आग्रह पूर्वक पूछने पर उमने संकुचाने हुए अपने दोहद की बात कह दी।

गर्भ में रहे हुए बालक की इच्छा ही गर्भिणी की इच्छा हुआ करती है। उमी म बालक की रुचि और भविष्य का पता लगाया जा सकता है। पद्मावती के मन में राजा मनने की इच्छा हुई थी। यह जान कर दधिराजन को बहुत प्रमत्तता हुई। उसे विश्वास हो गया कि पद्मावती के गर्भ में उत्पन्न होने वाला बालक बहुत तेजस्वी और प्रभावशाली होगा।

रानी का दोहद पूरा करने के लिए उमी प्रकार सवारी निकली। रानी राजा के वेश में हाथी के सिंहासन पर बैठी थी। राजा ने उस पर छत्र धारण कर रक्खा था। नगरी की सारी जनता यह दृश्य देखने के लिए उमड़ रही थी। उसे इस बात का हर्ष था कि उनका भागी राजा बड़ा प्रतापी होने वाला है।

सवारी का हाथी धीरे धीरे नगरी को पार करके मन में आ पहुँचा। उन दिनों वसन्त ऋतु थी। लताएं और वृक्ष फूल, फल तथा कोमल पत्तों से लदे थे। पक्षी मधुर शब्द कर रहे थे। फूलों की मीठी मीठी सुगन्ध आ रही थी। यह दृश्य देख कर हाथी को अपना पुराना घर याद आगया। बन्धन में पड़े रहना उसे असह्य लगता। उसका मन अपने पुराने साथियों से मिलने के लिये व्याकुल हो उठा। अकुश की अपेक्षा करके वह भागने लगा। महानत ने उसे रोकने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु हाथी ने माना। उसने महा-धत को नीचे गिरा दिया तथा पहले की अपेक्षा अधिक बग में दौड़ना शुरू किया। राजा और रानी हाथी की पीठ पर रह गए।

स्वतन्त्रता सभी को प्रिय होती है। उस प्राप्त करके हाथी प्रमत्त हो रहा था। साथ में उसे भय भी था कि कहीं दुबारा बन्धन में न पड़ जाऊँ इसलिए वह धीरे धीरे दौड़ रहा था।

जात मान कर दीक्षा अङ्गीकार कर ली। कठोर तपस्या तथा निर्दोष संयम का पालन करती हुई वह प्रायुष्य पूरी होने पर काल करके देवलोक में उत्पन्न हुई।

अपने दिए हुए वचन के अनुसार उमने मृत्युलोक में आकर उदयन राजा को प्रतिबोध दिया। राजा ने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। कठोर तपस्या द्वारा वह राजर्षि हो गया।

यथामय कर्मों को खपा कर दोनों मोक्ष प्राप्त करेंगे।

(१६) पद्मावती

पद्मावती वैशाली के महाराजा चेटक की पुत्री और चम्पा नरेश महाराजा दधिवाहन की रानी थी। दधिवाहन न्यायी, प्रजापत्सल और धार्मिक राजा था। रानी भी उसी के समान गुणों वाली थी। राजा और रानी दोनों मर्यादित भोगों को भोगते हुए सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे।

एक बार रात्रि के पिछले पहर में रानी ने एक शुभस्वप्न देखा। पृथ्वी पर स्वप्नशास्त्रियों ने बताया कि रानी के गर्भ में किसी प्रतापी पुत्र का जन्म होगा। राजा और रानी दोनों को बड़ी प्रसन्नता हुई।

रानी ने गर्भ धारण किया। कुछ दिनों बाद उसके मन में विविध प्रकार के दोहद (गर्भिणी की इच्छा) उत्पन्न होने लगे। एक बार रानी की इच्छा हुई— मैं राजा का वेश पहिन्नूँ। सिर पर मुकुट रखूँ। राजा मुझ पर छत्र धारण करे। इस प्रकार सज धज कर मेरी मवारी नगर में से निकले। इसके बाद वन में जाकर क्रीड़ा करूँ। लज्जा के कारण रानी अपने इस दोहद को प्रकट न कर सकी, किन्तु इच्छा बहुत प्रबल थी इसलिए वह मन ही मन घुलने लगी। उसके चेहरे पर उदासी छा गई। शरीर प्रतिदिन दुर्बल होने लगा।

राजा ने रानी में दुर्बलता का कारण पूछा। रानी ने पहले

के समय इस बात को छिपा रखने के लिए उसे उलटना दिया गया। माधियों ने पद्मावती को गुप्त रूप में रख लिया, जिसमें धर्म की निन्दा न हो और गर्भ को भी किसी प्रकार का धक्का न पहुँचे।

समय पूरा होने पर पद्मावती ने सुन्दर बालक को जन्म दिया। माधियों इस बात से अममञ्जस में पड़ गईं। लोकव्यवहार के अनुसार वे बालक को अपने पाम नहीं रख सकती थीं किन्तु उस की रक्षा भी आवश्यक थी। दूसरी माधियों को इस प्रकार अममञ्जस में देख कर पद्मावती ने कहा—इस निषय में चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं स्वयं मारी व्यवस्था कर लूँगी। जिसमें लोक निन्दा भी न हो और बालक की रक्षा भी हो जाय।

रात पड़ने पर पद्मावती बालक को लेकर रमशान में गई। जलती हुई चिता के प्रकाश में उसने बालक को इस तरह रख दिया, जिसमें आने जाने वाले की दृष्टि उस पर पड़ जाय। स्वयं एक भाड़ी के पीछे छिप कर देखने लगी।

थोड़ी देर बाद वहाँ एक चण्डाल आया। वह रमशान भूमि का रक्षक था। उसके कोई सन्तान न थी। बालक को देख कर वह बहुत प्रसन्न हुआ और मन ही मन कहने लगा—मेरे भाग्य से कोई इस बालक को यहाँ छोड़ गया है। मेरे कोई सन्तान नहीं है। आज इस पुत्र की प्राप्ति हुई है। यह कह कर उसने बालक को उठा लिया।

घर जाकर चण्डाल ने बालक अपनी स्त्री को सौंप दिया। साथ में कहा—हमें की है। इसे अच्छी तरह पालना। देस कर बहुत प्रसन्न हुई। थी। सारा हाल देख कर नेतारहेगा। ने लगी।

का मार्ग बता दिया ।

पास वाले नगर में आकर पद्मावती साधियों के उपाश्रय में चली गई । वन्दना नमस्कार करके उनके पास बैठ गई । साधियों ने उससे पूछा—बहिन तुम कौन हो ? कहाँ में आई हो ?

पद्मावती ने उत्तर दिया— मैं एक रास्ता भूली हुई अगला हूँ । रुष्ट और आपत्तियों से छुटकारा पाने के लिए आपकी शरण में आई हूँ । पद्मावती ने अपना वास्तविक परिचय देना ठीक न समझा ।

साधियों ने उसे दुखी देख कर उपदेश देना शुरू किया— बहिन ! यह संसार असार है । जो वस्तु पहले सुखमय मालूम पड़ती है वही बाद में दुःखमय हो जाती है । संसार में मालूम पड़ने वाले सुख वास्तविक नहीं हैं । वे नश्वर हैं । क्षणभंगुर हैं । जो कल राजा था वही आज दर दर का भिखारी बना हुआ है । जिस घर में सुनहरे समय राग रंग दिखाई देते हैं, शाम को वहीं रुदन सुनाई पड़ता है । यह सब कर्मों की विडम्बना है । समार की माया है । इसमें फंसा हुआ व्यक्ति सदा दुःख प्राप्त करता है । यदि तुम्हें सम्पूर्ण और शाश्वत सुख प्राप्त करने की इच्छा हो तो समार का मोह छोड़ दो । संसार के भगडों को छोड़ कर आत्मचिन्तन में लीन हो जाओ ।

पद्मावती पर उपदेश का गहरा असर पड़ा । संसार के सारे सबन्ध उसे निःसार मालूम पड़ने लगे । उसने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया । साधियों ने चतुर्विध सध की आज्ञा लेकर पद्मावती को दीक्षा दे दी । जिस व्यक्ति का कोई इष्ट सम्बन्धी पाम में न हो या जिसके साथ किसी की जान पहिचान न हो, उसे दीक्षा देने के लिए सध की आज्ञा लेना आवश्यक होता है ।

पद्मावती आत्मचिन्तन तथा धर्मध्यान में लीन रहने लगी ।

दिनों बाद साधियों को उसके गर्भ का पता लगा । दीक्षा

अपराध के लिए क्षमा माँगने लगा। दधिमाहन ने उसे अपनी छाती से लगा लिया। पिता को त्रिभुवा हुआ पुत्र मिला और पुत्र को पिता। दोनों मेनाए जो परस्पर शत्रु बन कर आई थी, परस्पर मित्र बन गई। चम्पा और कचनपुर दोनों का राज्य एक होगया। दधिमाहन करकण्डू को राजमिहामन पर बिठा कर स्वयं धर्मध्यान में लीन रहने लगा।

तप, स्वाध्याय, ध्यान आदि में लीन रहती हुई पद्मावती ने आत्म कल्याण किया।

- | | |
|--|--|
| (१) ठाणाग ६ उ ३ सू. ६६१ टी | (६) सती चन्दनवाला अपरनाम वसुमती |
| (२) ज्ञाताधर्म ४ भाग अ १६ | (७) राजीमती |
| (३) त्रिपटिशलाकापुरुषचरित्र-
(पर्व १२ ५-८ १०) | (८) पूज्य श्री जगद्गुरुलालजी महा राज के व्याख्यान। |
| (४) पचाशक १२ गा० ३१ | (९) भगवत्पद गुरुवलि वृत्ति |
| (५) हरि आ नियुक्ति | गाथा = १० |

८७६- सतियों के लिए प्रमाणभूत शास्त्र।

निम्न लिखित शास्त्र और प्राचीन ग्रन्थों में सतियों का सचित्र वर्णन मिलता है

- | | |
|---------------|---|
| (१) ब्राह्मी | आनन्दकनियुक्ति गाथा १६६ |
| (२) सुन्दरी | „ „ गाथा ३४८, १६६ |
| (३) चन्दनवाला | „ „ गा० ५२०-२१ |
| (४) राजीमती | दशमेकालिकनियुक्ति अ० २ गा० ८
उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २२ |
| (५) दोपदी | ज्ञानासूत्र १६ वाँ अध्ययन |
| (६) कौशल्या | त्रिपटिशलाकापुरुषचरित्र पर्व ७ |
| (७) मृगावती | आनन्दकनियुक्ति गा० १०४८
दशमेकालिकनियुक्ति अ० १ गा० ७६ |

करण्डू से कह दो कि मैं तुम्हारा राज्य छीन कर मैं ब्राह्मण को गॉन दूँगा। साथ ही उसने लड़ाई के लिए तैयारी शुरू कर दी।

ब्राह्मण ने जाकर सारी बात करकण्डू से कही। उसने भी युद्ध की तैयारी की और चम्पा पर चढ़ाई कर दी।

बाप और बेटा दोनों एक दूसरे के शत्रु बन कर रणक्षेत्र में आ डटे। दूसरे दिन सुनहरी युद्ध शुरू होने वाला था।

पद्मावती को इस बात का पता चला। एक मामूली सी बात पर पिता पुत्र के युद्ध और उसके द्वारा होने वाले नरमहार की कल्पना से उसे बहुत दुःख हुआ।

वह करकण्डू के पास गई। मिपाहियों ने जाकर उसे खबर दी— महाराज ! कोई साध्वी आप से मिलना चाहती है। करकण्डू ने कहा—उसे आने दो।

पद्मावती ने आते ही कहा—बेटा !

करकण्डू आश्चर्य में पड़ गया। उसे क्या मालूम था कि यही साध्वी उसकी माँ हैं।

पद्मावती ने फिर कहा— करकण्डू ! मैं तुम्हारी माँ हूँ। दधिनाहन राजा तुम्हारे पिता हैं। ऐसा कह कर पद्मावती ने उसे शुरू से लेकर सारा हाल सुनाया। उसे माता मान कर करकण्डू ने भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। युद्ध का निचार छोड़ कर वह पिता से मिलने चला।

पद्मावती शीघ्रता पूर्वक चम्पापुरी में गई। एक साध्वी की आते देख कर नगरी का दरवाजा खुला। पद्मावती सीधी दधिनाहन के पास पहुँची और सारा हाल कहा।

‘करकण्डू मेरा पुत्र है’ यह जान कर दधिनाहन को बहुत हर्ष हुआ। उसी समय उन्हीं रातों में वह करकण्डू से मिलने चला। करकण्डू भी पिता से मिलने के लिए आ रहा था। मार्ग में ही दोनों मिल गए। करकण्डू दधिनाहन के पंखों में गिर पड़ा और अपने